बुलबुल-सीरीज़—संख्या १५

मेरे गुरुजन

लेखक—

श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा बी० ए०

प्रकाशक—

भीष्म एण्ड ब्रादर्स

पटकापुर, कानपुर

प्रथम संस्करण] सितम्बर १९४५ [मूल्य—एक रुपया

दो शब्द

जिन महापुरुषों के आदर्शों, उपदेशों और सम्पर्कों से लेखक के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ा है और जीवन की धारा इन महापुरुषों की कार्यशैली की ओर मुड़ गई है, उन्हीं का इस पुस्तक में जिक्र किया गया है, और विशेष कर उन बातों का जिक्र जिनका लेखक से सम्बन्ध रहा है। जिन पाठकों को इन महापुरुषों की समस्त जीवन घटनाओं के जानने की उत्सुकता हो, वे इनके जीवन-चरित्र पढ़ें, जो प्रायः हर जगह प्राप्त हो सकते हैं। लेखक ने तो इन १२ महापुरुषों से निज-सम्पर्क की कुछ घटनाओं का उल्लेख और उनके दस-पाँच उपदेश संग्रह करके उनकी ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। इन महापुरुषों की तो प्रत्येक घटना उपदेश से भरी है। परन्तु लेखक ने उनकी केवल एक-दो ही बातों की ओर इशारा किया है जैसे स्वामी विवेकानन्द का ज्ञान, स्वामी रामतीर्थ की भक्ति, पं० प्रतापनारायण का भाषा-प्रेम, आचार्य द्विवेदीजी का भाषा-शैली स्थिर करना, लालाजी का देश-प्रेम, तिलक महाराज की विद्वता, श्री अरविन्द और देशबन्धुदास का त्याग, मालवीयजी की लगन, हरदयालजी की विलक्षण बुद्धि, और महात्मा गाँधी की सत्य-निष्ठा। यदि हम इन महापुरुषों से एक-एक बात सीख लें तो हमारा जीवन सुधर जाये। इसी आशा को लेकर ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं और विश्वास है कि इन महापुरुषों की बातों से पाठकों को कुछ लाभ ही होगा।

—लेखक

सेवा-भाव में सराबोर

अपनी पुत्रवधू

श्रीमती अन्नपूर्णा देवी

को

स्नेह-भेंट

—नारायण प्रसाद अरोड़ा

विषय-सूची

श्री सत्यभक्त द्वारा 'सतयुग प्रेस' बहादुरगंज इलाहाबाद में मुद्रित ।

मेरे गुरुजन

स्वामी विवेकानन्द

यद्यपि इन पंक्तियों के लेखक को स्वामी विवेकानन्द जी के साक्षात् दर्शनों का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ, किन्तु वह उन्हें अपना गुरु मानता है। केवल दीक्षा लेने ही से गुरु नहीं होते। गुरु तो वही है जिसके उपदेशों से जीवन का पथ प्रदर्शन हो।

सन् १९०० मे जब मैंने हिन्दू-धर्म पर स्वामी जी का वह व्याख्यान पढ़ा, जिसमे उन्होने अमरीका के श्रोताओं को "बहनो और भाइयो" कह कर सम्बोधित किया था, तो एकदम मुझमे एक नई स्फूर्ति जाग्रत होगई। उस समय मैं स्कूल के नवें दर्जे में पढ़ता था। तब से लेकर आगे कई वर्षों तक स्वामी विवेकानन्द जी ही मेरे जीवन के मार्ग-प्रदर्शक बने रहे। इन्हीं वर्षों मे राजयोग, कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कोलम्बो से अल्मोड़ा, वेदान्त, आत्मा आदि स्वामी जी के व्याख्यान पढ़े। उनकी "प्रादुर्भूत वार्ता" और पत्र-संग्रह भी देखे। 'प्रबुद्ध भारत' और 'ब्रह्मवादिन' आदि उनसे सम्बन्धित मासिकपत्रो को भी नियमित रूप से अध्ययन करना शुरू कर दिया। उनका एक सुन्दर-सा चित्र भी जड़ कर घर मे टाँग लिया और उसी को देखकर मुसीबत के समय साहस ले लिया करता था क्योंकि हृदय पर उन्ही का रंग था। उनके समस्त व्याख्यानो मे 'ज्ञान-

योग' नामक संग्रह मुझे बहुत पसन्द था अतः उसे दो-तीन बार पढ़ा।

स्वामी जी पूर्ण अधिकार से बोलते थे। आज भी उनके व्याख्यान पढ़ने वाले को उनके आदेशों के सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं रहता, जैसे :—

१—उठो, जागो, और जब तक ध्येय न प्राप्त हो जाये रुको मत।

२—खड़े हो जाओ, और अपनी छाप जमाओ।

३—युवकों को गीता पढ़ने की अपेक्षा फुटबाल खेलने से अधिक लाभ होगा।

४—जो अपने को दुर्बल समझता है वह दुर्बल ही होगा।

५—वीर बनो, श्रद्धालु बनो, जो कुछ आना होगा आयेगा ही।

उनका जीवन-चरित्र पढ़ने से मालूम देता है कि उन्हें बचपन ही से अन्य खेलों की अपेक्षा राम, कृष्ण, शिव और काली की पूजा का खेल खेलने में आनन्द आता था। उन्हें साधुओं से बड़ी रुचि थी बहुधा वे उनकी ओर बहुत आकर्षित होते थे और जो कुछ उनके पास होता था वह उन्हें दे डालते थे। वे कहा भी करते थे कि एक दिन मैं भी साधू होऊँगा। उन्हें गाने-बजाने का भी शौक़ था, जिसकी पूर्ति उनके पिता ने एक शिक्षक रखकर कर दी थी। वे ब्रह्म समाज में भी सम्मिलित हुए किन्तु उन्हें वहाँ सन्तोष नहीं मिला। एक स्थान पर स्वामी जी ने कहा है कि हमारे जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब हम कोरे तर्क से तंग आ जाते हैं और पुस्तकों के भ्रमजाल से थक जाते हैं उस समय हमारे हृदय से एक वेदनायुक्त चीख निकलती है कि "यदि तू है, तो मुझे प्रकाश दे।"

स्वामी जी का वाक्य है कि "हृदय के प्रबल उच्छ्वास से ही हृदय में स्फूर्ति पैदा होती है। बुद्धि और विचार-शक्ति अच्छी चीज हैं लेकिन वे दूर तक नहीं जा सकतीं। भावों से ही गम्भीर रहस्यों का उद्‌घाटन होता है।" फिर स्वामी जी कहते है कि "इच्छा-शक्ति के सामने और सभी शक्तियाँ कमज़ोर हैं, क्योंकि इच्छा-शक्ति स्वयं ईश्वर के यहाँ से आती है। शुद्ध और दृढ़ इच्छा-शक्ति सर्व शक्तिमान है।"

स्वामी जी ने अपनी प्रखर बुद्धि अपने पिता श्री विश्वनाथ दत्त से और अपनी मृदुल प्रकृति अपनी माता देवी भुवनेश्वरी से प्राप्त की थी। उनकी माता में अपने बच्चों का चरित्र-निर्माण करने की क्षमता थी। उनकी माता अपने बच्चों को मुखाग्र सैकड़ों भक्तिपूर्ण भजन सुनाया करती थीं। एक स्थान पर स्वामी जी ने कहा है कि मुझ में जो कुछ भी अच्छाई और बड़प्पन आया वह सब मेरी माता की देन है।

उनमें कष्ट-सहन की अपार शक्ति और अटल दृढ़ता थी। उनमें अटल आत्म-विश्वास था कि उन्हें संसार को कुछ सन्देश देना है। वे निर्भय और चिन्ताविहीन थे। उनके विचार बड़े स्पष्ट वाक्यशैली बड़ी मनोहर और गति धारावाहिक थी। वे वीरों की तरह बोलते थे। उनके वाक्यों में तनिक भी लिब-लिबापन न था। वे व्यवहारिक वेदान्ती थे। उनके वचनों से ब्रह्मज्ञान के साथ-साथ सच्चा देश-प्रेम भी टपकता था। यदि किसी को उच्चकोटि की देशभक्ति की शिक्षा लेनी है तो स्वामी विवेकानन्द के लेख और व्याख्यान पढ़े। एक-एक शब्द से मर्दानगी टपकती है। एक जगह स्वामी जी कहते है कि "विदेशी शासन कभी कल्याणकर नहीं होता, तो भी कभी-कभी बुराई के बीच भी भलाई निकल ही आती है।" दूसरे स्थान पर उनका कहना है कि "मैं लोगों को घोर नास्तिक देखना पसन्द करूँगा

किन्तु कुसंस्कारों से भरे मूर्ख देखना न चाहूँगा। नास्तिकों में कुछ न कुछ जीवन तो होता ही है; इनके सुधार की तो कुछ आशा रहती है, वे मुर्दे तो नहीं होते, किन्तु कुसंस्कार से भरा मनुष्य बिलकुल बेकार हो जाता है।" स्वामी जी के व्याख्यान पढ़ते समय ऐसा मालूम देता है कि कोई देवदूत बोल रहा है।

युवाकाल में मिल, स्पेन्सर और हक्सले आदि के ग्रन्थ पढ़ते-पढ़ते नरेन्द्रनाथदत्त नास्तिक बन गये। किन्तु परमहंस रामकृष्ण के प्रभाव से उनकी नास्तिकता नष्ट हो गई और अब नरेन्द्रनाथ ने विवेकानन्द का नाम धारण कर लिया और ऐसी उन्नति की कि कई अंशों में अपने गुरु से भी बढ़कर संसार की विशेष विभूतियों में से एक हो गये। उन्होंने अपने गुरु के नाम से कई आश्रम कायम किये हैं, जो आज भी सेवा का बड़ा सुन्दर कार्य कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने केवल भारत ही में नहीं वलिक विदेशों में भी वेदान्त का प्रचार करके भारत की उज्ज्वल कीर्ति की पताका फहराई है। स्वामीजी के शब्दों में "विस्तार ही जीवन का चिन्ह है।"

स्वामीजी के मठों में बेलूर मठ बड़ा प्रसिद्ध है। उसमें एक बड़ा भव्य मन्दिर बना है जिसमें रामकृष्ण परमहंस की संगमरमर की एक सुन्दर मूर्ति रखी है जिसके सामने नित्य सायंकाल सैकड़ों भक्तजन बैठकर कीर्तन और भगवान का भजन करते हैं। मन्दिर बड़ा विशाल है। उसी में एक स्थान पर स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति भी रखी है। मठ के हाते में कई छोटी-छोटी मठिया है जिनमें आश्रम से सम्बन्धित जनों की मूर्तियाँ है। स्थान दर्शनीय है।

वेदान्त के अतिरिक्त अन्य विषयों पर भी स्वामीजी ने अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में वे कहते

हैं, "जब तक शिक्षा मज्जागत होकर संस्कार मे परिणत नहीं हो जाती, तब तक ज्ञान अनेक प्रकार के भावों के बीच ठहर नहीं सकता।" सामाजिक बुराई के बाबत स्वामीजी का मत है कि "सामाजिक व्याधि को हम बाहरी प्रयत्नों से दूर नहीं कर सकते, मन के ऊपर प्रभाव डालने से ही सुधार हो सकता है। शिक्षा के द्वारा परोक्ष भाव से उसके लिये प्रयत्न करना होगा। अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण आन्दोलन के द्वारा किसी सामाजिक बुराई को दूर करने की कोशिश करने से कोई लाभ नहीं हो सकता।"

शक्ति के बारे मे स्वामीजी का वचन है—"जब शक्ति का बुरे उद्देश्य से व्यवहार होता है तो वह आसुरिक भाव धारण कर लेती है।" दूसरे स्थान पर स्वामीजी कहते हैं, "दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले पुरुषों के शरीर से मानो एक प्रकार का तेज निकला करता है, और उनका मन जिस अवस्था में रहता है, वैसा ही वे दूसरे के मन को भी बना देते हैं।" मनुष्यता और धन का ज़िक्र करते हुए स्वामीजी का कथन है कि "क्या कभी किसी ने देखा है कि कोई आदमी रुपये से मनुष्य बनता है, मनुष्य ही सदा से रुपये बनाता है।" धर्म के सम्बन्ध मे स्वामी जी का मत है कि "धर्म वही है जिसके पालन से हम लोग अक्षर-पुरुष का साक्षात्कार कर सकें।"

सच्चे साधु का वर्णन स्वामी जी इन शब्दों मे करते हैं, "अगर हृदय रंग गया तो बाहर रंगने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।" अपनी और सामाजिक उन्नति के सम्बन्ध में उनका कथन है कि "सारे संसार को अपने साथ लिये बिना संसार का एक परमाणु भी नहीं चल सकता।"

उनके व्याख्यानो मे उपर्युक्त प्रकार के अनेक उपदेशपूर्ण वचन भरे पड़े हैं जिनसे हम सरीखे सांसारिक लोगों को शिक्षा

और प्रोत्साहन मिलता रहा है और आगे भी मिलता रहेगा। जिस समय १९०६ में मेरी माता का देहान्त हुआ, उस समय मुझे बड़े जोर की रोआई छूट रही थी। मैं फौरन स्वामी जी के चित्र के सामने गया और उनसे साहस लेकर ढाढस बाँधा। सम्भव है ऐसे ही अवसर अनेक युवकों को आये होंगे और उन्हें भी स्वयं स्वामीजी के दर्शन से या उनके चित्र के दर्शन से धैर्य और साहस मिला होगा। देखने में भी स्वामी जी बड़े सुन्दर और विशाल थे। उनका वह स्वरूप, जिसमें वह अपने वक्षस्थल पर अपने दोनों हाथ बाँधे खड़े हैं, सर पर तिरछा, साफा बंधा हुआ है, बड़ी-बड़ी आँखें एक ओर को देखती हुई आपके मन को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, बड़ा ही भव्य है।

इन पंक्तियों का लेखक अपने सार्वजनिक जीवन का पहला दिन वही समझता है जिस दिन उसने स्वामी विवेकानन्द जी का पहला व्याख्यान पढ़ा। स्वामी जी इस संसार में बहुत थोड़े समय रह पाये। उनका जन्म १३ जनवरी १८६३ को हुआ था और वह केवल ३९ वर्ष जीवित रह सके। किन्तु उनका आगमन और प्रस्थान एक प्रकाशमय तारे की तरह हुआ, जो चमकती हुई ज्योति के रूप में वायुमण्डल में प्रवेश करती है और कुछ क्षणों तक अपना प्रकाश दिखला कर एकदम लुप्त हो जाती है। इस अल्पकाल में भी स्वामीजी अपने उपदेशों की वह ज्योति फैला गये हैं जो दीर्घ समय तक देश के युवकों को साहस, वीरता और जीवन का सच्चा उद्देश्य प्रदान करती रहेगी। उनके निम्नलिखित वाक्यों का मनन कीजिये और अपने में बल तथा शक्ति का संचार कीजिये :—

१—सर्वोपरि बात यह है कि मजबूत बनो और मर्द बनो। मैं उस आदमी की भी इज्जत करता हूँ जो दुष्ट होते हुए भी मर्दाना और मजबूत है, क्योंकि उसकी शक्ति उसे एक

दिन उसकी दुष्टता छोड़ने को बाध्य कर देगी या उसे समस्त स्वार्थमय कार्यों को तिलाञ्जलि दे देने को मजबूर कर देगी और उसे सत्य के मार्ग पर ले आयेगी।

२—अपने दुःख का कारण दूसरो को कहना कमजोरी बढ़ाना है। इसलिये अपने अन्याय दूसरों के मत्थे न मढ़ो। अपने पैरों पर खड़े हो जाओ और सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लो। यह कहो कि—"यह जो विपद हमारे ऊपर सवार है, मेरी ही करनी का फल है और इससे साबित है कि मेरी करनी इसे दूर करेगी।" जिसे मैंने उत्पन्न किया उसे मैं मिटा भी सकता हूँ; जिसे किसी ग़ैर ने उत्पन्न किया उसे मैं नहीं हटा सकता। इसलिये उठो, दिलेर बनो, बलवान बनो। सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर उठा लो। यह याद रखो, तुम्हारा भाग्य तुम्हारे हाथ मे है। जो-जो शक्ति और सहायता तुम चाहते हो वह सब तुम्हारे अन्दर है। इसलिए अपना भाग्य आपही बनाओ।

३—चालाकी से कोई महान कार्य नही होता है। प्रेम, सत्यानुसरण, और उत्साह की सहायता से सारे कार्य सम्पन्न होते हैं अतएव पुरुषार्थ प्रकट करो।

स्वामी रामतीर्थ

हिन्दू-मित्र-धर्म सभा के मंत्री की हैसियत से मैंने परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी को कानपुर बुलाने के लिये एक पत्र लिखा था। उक्त पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने एक श्लोक और कुछ अंगरेजी वाक्य लिखे थे जिनका अर्थ था:—"तुम्हारे उद्देश्य फलें फूलें और तुम्हारे मन्तव्य सफल हों। रही पहाड़ से उतर कर नीचे आने की बात, वह अभी कई वर्ष तक न हो सकेगी।" इस प्रकार पत्र द्वारा स्वामी रामतीर्थ जी के पास इन पंक्तियों के लेखक की पहुँच होगई, यद्यपि उनके साक्षात् दर्शनों का सौभाग्य न मिल पाया।

अब तक स्वामीजी के लेखों और व्याख्यानों का कोई संग्रह न छपा था। अतः इधर-उधर से जहाँ कहीं भी स्वामीजी के लेख आदि जो कुछ भी हिन्दी, उर्दू, या अंगरेजी में मिला उसे पढ़ता रहा। मैंने पहले पहल उनके वे उर्दू के लेख पढ़े जो हिन्दी अक्षरों में पुस्तकाकार पं० राम भजन जी चतुर्वेदी ने कानपुर से प्रकाशित किये थे। मैं सदा इसी खोज में रहता था कि कहीं स्वामीजी का लेख या व्याख्यान पढ़ने को मिल जाय। उर्दू के "ज़माना" में स्वामीजी के कई लेख, जैसे "नक़द धर्म" आदि देखे। लाला बैजनाथ की Ancient & Modern Hinduism नामक पुस्तक में स्वामीजी की लिखी हुई एक लम्बी-सी भूमिका पढ़ी। यह भूमिका क्या है, एक बड़ा ही सुन्दर निबन्ध है। इसमें एक स्थान पर साधुओं के सम्बन्ध में लिखते हुए स्वामी जी कहते हैं, "कहीं-कहीं रँगे कपड़े में रँगा दिल भी नज़र आ जाता है।" इसके पश्चात् मैंने यह नियम-सा कर लिया था कि

स्वामीजी के सम्बन्ध मे जो कुछ मिले उसका संग्रह
लिया जाय।

स्वामीजी के एक परम शिष्य मिस्टर पूर्णसिंह थे ज
हो आये थे और देहरादून मे इम्पीरियल केमिस्ट थे।
कानपुर आये और कुर्सवा में पं० देवीप्रसाद जी शुक्ल
ठहरे तो मैं उनसे मिला। उनमे स्वामी रामतीर्थ जी
मस्ती थी। बड़े प्रेमी सज्जन थे। बातचीत मे ऐसा म
था कि मानो स्वयं स्वामी जी से ही बात हो रही है। T
ring dawn और Noon मे मिस्टर पूर्णसिंह के जो ले
बिल्कुल स्वामी रामतीर्थ जी के लेखो से मिलते थे। दोनों की
भाषा भी करीब-करीब एक सी थी। पूर्णसिंहजी कई बार कानपुर
आये और प्रत्येक बार मै उनसे मिला। उनसे कुछ प्रेम हो
गया था।

स्वामी रामतीर्थ के एक दूसरे शिष्य नारायण स्वामी थे।
इनमें स्वामी रामतीर्थ की-सी कोई बात नहीं थी, न तो वे उतने
विद्वान् ही थे और न इनमे स्वामी राम की-सी मस्ती ही थी।
कपड़े जरूर रँगे थे। इनका स्वभाव भी कुछ झक्कड़ी था। यह
एक-दो बार कानपुर आकर मेरे यहाँ भी ठहरे थे। एक बार जब
यह मेरे यहाँ ठहरे हुए थे तब यह केवल दही खाते थे। जब
उनको घोर जाड़े के दिनो मे निरी दही खाते हुये मेरे पिता जी
ने देखा तो मुझसे कहने लगे कि 'इन्हे संखिया क्यो नही दे देते।'
परन्तु मैं तो स्वामी राम का भक्त था और Love me & love
my dog कहावत के अनुसार श्रीनारायण स्वामी से भी
प्रेम करता रहा। इनके सम्बन्ध मे एक घटना और मालूम हुई।
जब स्वामी रामतीर्थ जी टेहरी की एक गुफा में रहते थे, तब इन
नारायण स्वामी को उन्होंने थोड़ी दूर पर एक दूसरे स्थान मे
रहने का आदेश दे रखा था, और सप्ताह में एक बार अपने पास

बुला लेते थे। सप्ताह में केवल एक बार स्वामी राम से मिलने के सौभाग्य की बात नारायण स्वामी को असह्य हो गई और उन्होंने स्वामी राम से कहा, "महाराज! मैंने अपना घर-बार आपकी सेवा करने के लिये छोड़ा है और आप मुझे अपने पास भी नहीं रहने देते।" इस पर स्वामी राम ने उत्तर दिया, "राम ने अपना घर-बार इसलिये नहीं छोड़ा है कि वह एक दूसरी गृहस्थी जमा कर ले। जाओ, अब तुम्हारा 'फर्ज' एक महीने के लिये बढ़ा दिया गया।"

जब स्वामी रामतीर्थ जी के अंगरेजी लेखों की पर्याप्त सामग्री मेरे पास जमा हो गई, तो मैंने एक संग्रह मदरास की गणेश कम्पनी को प्रकाशनार्थ भेज दिया। गणेश कम्पनी ने इस संग्रह के लिये पारितोषिक स्वरूप उक्त संग्रह की २५० प्रतियाँ भेजी थीं। स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के लेखों का अंगरेजी में यह पहला ही संग्रह था जो प्रकाश में आया था। नारायण स्वामी को मेरा सबसे पहल स्वामी राम का संग्रह प्रकाशित करवाना खल गया। उन्होंने मुझे लिखा कि मुझे उक्त संग्रह प्रकाशित कराने का कोई अधिकार न था। मैंने भी उन्हें एक कड़ा उत्तर लिखा कि, "अगर हिम्मत हो तो आप इस मामले को अदालत में लाइए। उस समय मैं आपके ढोंग को देश के सामने प्रकट करूँगा। आप स्वामी राम के ठेकेदार नहीं हैं। स्वामी राम ने अपने लेखों में कई जगह लिख दिया है कि 'जो चाहे मेरे लेखों को छाप ले'।"

इसके पश्चात् मैंने स्वयं स्वामी राम की अंगरेजी कविताओं का संग्रह और मिस्टर पूर्णसिंह की लिखी हुई स्वामी जी की जीवनी कानपुर से प्रकाशित की। थोड़े दिनों के बाद स्वामी जी के राष्ट्रीय लेखों का हिन्दी अनुवाद करके मैंने "स्वामी रामतीर्थ का राष्ट्रीय सन्देश" प्रकाशित किया। इस पुस्तक का दूसरा

संस्करण स्वामी सत्यदेव ने अपनी 'सत्य-ग्रन्थ-माला' में मुज़फ़्फ़रपुर से प्रकाशित किया था। और तीसरा संस्करण मैंने स्वयं फिर प्रकाशित किया। "राम बादशाह के छः हुक्मनामे" के नाम से एक पुस्तक कलकत्ते की हिन्दी पुस्तक एजेन्सी ने भी प्रकाशित की थी। इन सबके बाद लखनऊ से 'रामतीर्थ पब्लीकेशन लीग' की ओर से स्वामी रामतीर्थ के समस्त लेख, व्याख्यान और पत्र आदि "In the Woods of God-realisation" के नाम से प्रकाशित हुये हैं। इस वृहत् संग्रह का प्रकाशन नारायण स्वामी के प्रयत्नों का फल है। उनका यह काम उनकी कीर्ति को बनाये रखने के लिये पर्याप्त है।

मेरे अंगरेज़ी संग्रह के प्रकाशित होने पर मेरा पत्र व्यवहार स्वामी रामतीर्थ के कई भक्तों से हुआ। इनमें सबसे पहले हैं श्री गुना जी और काका कालेलकर जिन्होंने मराठी में स्वामीजी के लेखों का अनुवाद करके प्रकाशित किया था। मैंने भी इस मराठी अनुवाद में पत्र व्यवहार द्वारा स्वामीजी के लेखों का स्पष्टीकरण करने में उपर्युक्त सज्जनों की सहायता दी थी जिसको उन्होंने अपनी मराठी पुस्तक की भूमिका में लिख भी दिया है। स्वामीजी के संग्रह की बदौलत मेरे पास स्वामीजी के अमरीकन भक्तों के पत्र भी आये तथा दो-तीन सज्जनों ने स्वामीजी के अमरीका में लिये हुये चित्र भी भेजे थे। इन चित्रों में स्वामीजी का एक चित्र है जिसमें वह पादरियों का-सा गाउन पहने हैं और साफ़ा बाँधे हैं। इसके पहले मैंने स्वामीजी का केवल एक ही चित्र देखा था जिसमें वह नगे बदन केवल एक अँगौछा पहने हुए बैठे हैं।

स्वामीजी अंगरेज़ी, उर्दू, और हिन्दी तीनों ही भाषाओं में बड़े प्रवाह के साथ लिखते और बोलते थे। वे तीनों ही ज़बानों

के पण्डित थे। ऐसा मालूम देता है कि उनके शब्द एक के बाद दूसरे अपने आप ही निकलते चले आते हैं। उनकी भाषा हृदय की भाषा होती थी। स्वामीजी केवल तीनों भाषाओं के ज्ञाता ही नहीं थे बल्कि उन्होंने इन भाषाओं में कविताएं भी लिखी हैं। और कविता है भी मनोभावों का व्यक्त करने का नाम। एक कविता में स्वामी जी लिखते हैं :—

O welcome, welcome, welcome Pain,

The more the suffering the more the gain.

दूसरी जगह वह लिखते है :—

"बादशाह दुनिया के हैं मोहरे मेरी शतरंज के,

दिल्लगी की चाल है, सब रंग सुलाहोजंग के।"

तीसरे स्थान पर उनके मुँह से एक सच्चा वेदान्ती बोलता है :—

दरिया से हुबाब की है यह सदा,

तुम और नहीं हम और नहीं।

हमको न समझ अपने से जुदा,

तुम और नहीं हम और नहीं।

जब गुँचा चमन मे सुबह को खिला,

तब कान में गुल के यों कहने लगा।

हाँ, यह उकदा है हम पै खुला,

तुम और नहीं हम और नहीं।

दाने ने भला खिरमन से कहा,

चुप रह, इस जा नहीं चूँ और चरा।

वहदत की झलक कसरत मे दिखा,

तुम और नहीं हम और नहीं।

स्वामीजी की अंगरेज़ी कविताओं को "Swami Ram's Poems" के नाम संग्रह करके मैंने छपवा लिया था और उनकी हिन्दी उर्दू की कविताएं 'रामवर्षा' नामक पुस्तक मे संग्रहीत हैं। स्वामीजी मे मस्ती हद दर्जे की थी, जो उनकी हर बात से टपकती है। एक स्थान पर गंगा जी को सम्बोधित करते हुये आप कहते हैं, "प्यारी गंगो।" उनकी मस्ती के दर्शन उनकी भाषा, भावों और सारी लेखनशैली मे हो जाते हैं। वे ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्तियोगी अधिक थे। उनकी बात-बात से भक्ति छलकती है। भक्ति का वर्णन करते हुए स्वामीजी एक स्थान पर लिखते हैं:—भक्ति तीन प्रकार की होती है, (१) एक पत्थर की-सी जो पानी मे डूब तो जाता है और ऊपर से भीग भी जाता है किन्तु तोड़िये तो भीतर से सूखा निकलेगा। (२) दूसरी प्रकार की भक्ति कपड़े की-सी होती है, जो पानी मे सराबोर तो हो जाता है परन्तु अपना अस्तित्व अलग बनाये रखता है। निकालिए तो अलग दिखलाई देगा। (३) तीसरी भक्ति शकर की-सी होती है, जो पानी मे ऐसी घुल-मिल जाती है कि अपना अस्तित्व खो देती है और पानी के साथ एक रूप हो जाती है। स्वामी जी ऐसे ही भक्तों मे से थे। उनका चित्र देखने से वे साक्षात् प्रेम की मूर्ति मालूम देते हैं।

परमभक्त स्वामी रामतीर्थ केवल भाषाओं ही के पंडित न थे। वे गणित शास्त्र के भी धुरन्धर विद्वान थे। जब वे सन्यासी नहीं हुए थे, उस समय उन्होने गणित शास्त्र पर एक विद्वतापूर्ण पुस्तिका लिखी थी। उस समय वे तीर्थराम गोस्वामी एम० ए० के नाम से प्रख्यात थे। गृह-त्याग के साथ उन्होंने अपने नाम को भी उलट दिया और स्वामी रामतीर्थ बन गये। स्वामीजी की गणित की योग्यता के सम्बन्ध में एक किम्वदन्ती है कि किसी इम्तिहान के पर्चे मे १३ प्रश्न थे और ऊपर लिखा था

कि Solve any nine out of these thirteen अर्थात् निम्न-लिखित १३ प्रश्नों में से कोई भी ९ करो। स्वामीजी ने इम्तिहान क निश्चित समय के भीतर ही तेरहों सवाल हल कर दिये और ऊपर लिख दिया Examine any nine out of these thirteen अर्थात् इन तेरहों प्रश्नों में से चाहे जौन से नौ जाँच लो। अपने उत्तरों के ठीक होने में उनका कितना जबरदस्त आत्मविश्वास था!

जिस समय स्वामी जी ने सन्यास लिया था उस समय एक बड़ी दर्द भरी कविता निकली थी, जिसकी दो पक्तियाँ ये हैं :—

चिर सहचरी "रयाजी" छोड़ी रम्यतटी रावी छोड़ी।
शिखा-सूत्र के साथ हाय! उन बोली पंजाबी छोड़ी।

सन्यास लेकर वे प्रान्तीयता के संकीर्ण दायरे में न रहकर देश और विश्व के रंग में एकमय हो गये। कदाचित यह उन्हीं का प्रभाव था कि उन दिनों में भी घंटों बैठकर 'ओम! ओम!' किया करता था। जादू वह है जो सर पर चढ़ कर बोले।

स्वामी जी का जन्म सम्वत १९३० में गुसाईं तुलसीदास जी के वंश में हुआ था। अंगरेजी, फारसी और संस्कृत के विद्वान होने के अतिरिक्त आपने गणित में एम० ए० पास करके लाहौर के एक कालिज में अध्यापकी भी की थी। जिस समय आप गणित के अध्यापक थे आप अपने छात्रों को व्यायाम करने और बल प्राप्त करने का भी बहुत कुछ उपदेश दिया करते थे. क्योंकि आप बलहीन होने को पाप समझते थे। भारतवर्ष के अलावा आपने जापान, अमेरिका और मिश्र आदि देशों में अनेकों भाषण दिये थे और भारत की कीर्ति को बढ़ाया था। आप अपने को प्रायः राम कहा करते थे। प्रेम, निर्भयता और स्वतन्त्रता के आप मानो अवतार थे।

स्वामीजी को नदी मे नहाने का बड़ा शौक़ था। टेहरी मे नदी मे नहाते समय वे प्रवाह मे बह गये और धार की तीव्रता के कारण रुक न सके। अतः आपने अपनी प्यारी "गंगो" की गोद मे जल-समाधि ले ली। कहते हैं कि जिस समय उनकी लाश नदी मे मिली तो वे पलथी मारे हुए मिले और मुँह ऐसा था कि मानो ओम का उच्चारण कर रहे हैं। चाहे जो कुछ भी हो, इससे उनकी Presence of mind अर्थात् होशहवाश ठीक रहना तो प्रकट ही होता है।

स्वामीजी एक ऐसे महापुरुष थे जो एक हवाई जहाज़ की तरह आये और तेज़ी से निकल गये। वे केवल ३३ वर्ष ही जिये। सच है Whom the Gods love die young, अर्थात् जिन्हे ईश्वर प्रेम करता है वे अल्प आयु मे ही मर जाते हैं।

स्वामी रामतीर्थ जी महाराज के कुछ उद्गार

१—ईश्वर पर अपनी मर्ज़ी मत चलाओ। शारीरिक आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे ईश्वर की इच्छा को पूर्ण होने दो। सांसारिक आवश्यकताओ मे ईश्वर की मर्ज़ी ही को अपनी मर्ज़ी बना लो।

२—स्त्रियाँ, लड़के और शूद्र राष्ट्र रूपी वृक्ष की जड़ें हैं। उनकी शिक्षा और पालन की ओर भारत वासियों का दुर्लक्ष्य है, यही रसातल मे पहुँचाने का मुख्य कारण है। उच्च श्रेणी के कहलाने वाले ब्राह्मणादि तो केवल राष्ट्र रूपी वृक्ष के फल हैं। वृक्ष के फलो की ओर हमे इतना ध्यान नहीं देना चाहिये, जितना जड़ो की ओर। जड़ को योग्य खाद और पानी देकर वृक्षस्थ फलो को अधिक टिकाऊ करने का हमारा आद्य कर्तव्य होना चाहिये।

गरीब लोगों, स्त्रियों और लड़कों के ही द्वारा सत्य की प्रगति होने वाली है।

३—सब दानों में विद्यादान अति श्रेष्ठ है। एकाध समय किसी दीन को भोजन दोगे तो उसको दूसरे दिन भी भूख अवश्य लगेगी। परन्तु यदि तुम उसे एकाध कला सिखाओगे तो उसको सदा के लिये खाने-पीने का प्रबन्ध हो जायगा। वह विद्या, रोजगार या कला इस प्रकार की होनी चाहिये कि जिससे उसका जन्म सार्थक हो जाय। सभ्य भिखारी रहने के बदले जूतियाँ सीना अधिक अच्छा है।

४—जहाँ पर उद्योग की अप्रतिष्ठा होती है वहाँ पर अवनति और नाश सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। विद्या, ज्ञान, कला आदि उस स्थान से मुँह मोड़ लेते हैं। (आज पुण्यभूमि भारत की वैसी ही स्थिति है) परन्तु जहाँ पर उद्योग का स्वागत होता है वहाँ का मुर्दापन चला जाता है। चैतन्यता झलकती है। ज्ञानरूपी सूर्य तेजी के साथ चमकने लगता है और वह देश विविध कला सम्पन्न हो जाता है। इसलिये उठो, उद्योग का स्वागत करो उसे अपनाओ और खूब फलो फूलो।

५—भारतवासियो! चेतो! देश में भूखों मरने वाले नारायणों की तथा कष्ट सहने वाले विष्णुओं की पूजा करो! दीन बालकों को विद्योपार्जन के लिये अमेरिका भेजो, जिससे वे विद्या सीख अमेरिका से लौटने पर तुम को अपने पैरों खड़े रहना सिखलावें! जिससे सहस्रों ही नहीं वरन् लाखों बन्धुओं का, पूज्य देवताओं का कल्याण होगा।

६—अपने ग्रामीण बन्धुओं, अन्त्यज जातियों, चमार, भङ्गी, बलाई आदि को विद्या सिखाने के लिये क्या तुम्हें शरम लगती है ? यदि यह सत्य हो तो धिक्कार है तुम्हारी रीतियों को और सामाजिक मर्यादा को !

७—क्या तुम्हें अपनी सांपतिक, सामाजिक एवम् नैतिक दशा सुधारने की इच्छा है ? यदि है, तो शूद्रों को पहिले अपनाओ ? उनके गले लगो ? याद रक्खो, जब तक तुम शूद्रों को नहीं अपनाओगे तब तक तुम्हारे अङ्गीकृत कार्यों में यश मिलना टेढ़ी खीर है ।

८—एकाध सुन्दर पुस्तक लिखने में, प्रतिभा-सम्पन्न कवि बनने में, अथवा श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कार्य करने में उतनी ही अक्ल लगती है और उतनी ही प्रतिष्ठा मिलती है जितनी हल चलाने में । ऐसे विचार जब तक किसी जाति वा किसी राष्ट्र में नहीं फैलते तब तक वह जाति और वह राष्ट्र उन्नतावस्था पर कदापि नहीं चढ़ सकते ! इसलिये उठो ! भेदभाव को तज कर भूले हुए मार्ग को ढूँढो ! संसार में अपना नाम अमर कर जाओ । इसी में तुम्हारा, तुम्हारे देश का और तुम्हारी भावी सन्तान का सच्चा सुख है ।

९—अगर संसार में तीन करोड़ ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, या राम जन्म लें तो भी तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता । जब तक तुम स्वयं अपने अज्ञान को दूर करने के लिये कटिबद्ध नहीं होते, तब तक कोई तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता इसलिये दूसरों का भरोसा मत करो ।

१०—अपने बहुमूल्य घी को कृत्रिम अग्नि के मुख में डालकर नष्ट करने के बजाय जठराग्नि को शान्ति करने के लिये

सूखी रोटी के कठोर टुकड़े पर क्यों नहीं डालते—वह जठराग्नि, जो करोड़ों जीवित, परन्तु क्षुधित नारायणों के हाड़-माँस को जला रही है। भारतवर्ष को ऐसे हवन की आवश्यकता है।

११—मन को हमेशा शान्त रक्खो। पवित्र विचारों को अपने हृदय में स्थान दो फिर संसार में कोई तुम्हारा विरोध नहीं कर सकता।

१२—प्रसन्न कार्यकर्त्ता! जिस समय तुम सफलता को ढूँढ़ना छोड़ दोगे उसी समय सफलता अवश्य आपको ढूँढ़ेगी।

१३—निर्लिप्त साक्षी के स्वरूप में सब झंझटों से स्वतन्त्र होकर कर्म करो, सदा स्वतन्त्र और निर्लिप्त रहो।

१४—राष्ट्र के हित की वृद्धि के लिये प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है॥

प० प्रताप नारायण मिश्र

'प्रताप गुरु' के दर्शनो का सौभाग्य तो इन पंक्तियों के लेखक को हुआ है किन्तु हृदय-पटल पर उनका चित्र धूमिल-सा दिखलाई देता है। कारण यह कि उन्हें बहुत छोटेपन में देखा था। मुझे एक ऐसी सूरत की याद है जो चौकोसिया टोपी पहने एक या दो बार देखी थी। उनका मूर्ति की जो कुछ धूमिल रेखा दिखलाई देती है कदाचित् वह उनकी एकमात्र तस्वीर के कारण बनी है, जो १६०६ की सरस्वती मे निकली थी। उन्हे देखने का सौभाग्य इसलिये हुआ कि वह पटकापुर के प० नारायण प्रसाद बाजपेयी (पं० उदयनारायण बाजपेयी के पिता) के यहाँ आया करते थे और बाजपेयी जी मेरे घर के पिछवाड़े ही रहते थे। मुझ मे प० प्रतापनारायण मिश्र के प्रति जो श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई वह उनके लेखों को पढ़कर हुई। उन्होंने लिखा बहुत कुछ है और ऐसे समय मे जब कि हिन्दी के लिखने वाले इने-गिने ही थे। उन्होने कई मौलिक पुस्तकें लिखी थीं और कई का बंगला से अनुवाद किया था। वह अपना मासिक 'ब्राह्मण' सदा घाटे से ही निकालते रहे। इसी मे उनके बड़े मनोरंजक और शिक्षाप्रद लेख निकलते रहते थे। इन लेखो मे राजनीति, समाज-सुधार, धार्मिक ढकोसलो की कड़ी आलोचना और साहित्य सम्बन्धी समस्याये सदा बड़ी लच्छेदार और रोजमर्रा की भाषा मे निकला करती थीं। 'ब्राह्मण' की फायलें देखने से पता चलता है कि यद्यपि पत्र के लेखों की भाषा आज की-सी परिमार्जित नहीं है, पर है बड़ी मुहाविरेदार। उनके लेखो के शीर्षक भी बड़े विचित्र रहते थे, जैसे :—(१) घूरे के लत्ता बिनै और कनातन

का ढोल बाँधें (२) घर की मेहरिया कहा नहीं मानती और चले हैं देश का उद्धार करने (३) रूस और भूस (४) कलयुगी ककहरा (५) प्रताप गुरु की पट्टी (६) भौं, (७) 'द' (८) ट (९) समझदार की मौत है (१०) मरे को मारे शाह मदार (११) ऊँच निवास नीच करतूती, आदि। इसी तरह के लेख उन दिनों प्रयाग के 'हिन्दी प्रदीप' में भी निकलते थे, जिसके सम्पादक थे पं० बालकृष्ण भट्ट और जिन्हें अपने लेखों में पं० प्रतापनारायण जी "परागी बाबा" के नाम से सम्बोधित करते थे।

अपने 'ब्राह्मण' का चन्दा माँगने के लिये वह "हरिगंगा" लिखते थे, जैसे :—

बहुत दिना बीते जिजमान,
अब तो करो दच्छिणा दान।
जो तुम देहौ बहुत खिझाय,
यह कौनिउ भलमन्सी आय।

इत्यादि।

पं० जी की लिखी हुई समस्त पुस्तकों का पता तो खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से लग सकता है किन्तु जो छोटी-छोटी पुस्तकें 'ब्राह्मण' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होती रहती थीं वे हैं :—'आल्ह-खण्ड' 'लोकोक्ति-शतक' 'तृप्यन्ताम' 'ब्रेडलास्वागत' 'मन की लहर' 'कानपुर महात्म्य' 'होली है' आदि।

पं० प्रतापनारायण की भाषा में सजीवता, प्रवाह, चुटीलापन और मुहाविरों की भरमार है। बात-बात पर कहावत मौजूद है। वे ऐसी भाषा लिखते थे जो आमफ़हम होती थी अर्थात् उनकी भाषा बोल-चाल की होती थी।

प्रताप गुरु को कांग्रेस से बड़ा प्रेम था क्योंकि कांग्रेस का जन्म उन्हीं के काल में हुआ था और यथासाध्य वे कांग्रेस का कोई अधिवेशन चूकते न थे।

एक स्थान पर 'ब्राह्मण' में लिखा है कि मदरास के कांग्रेस अधिवेशन में जाने के लिये उन्होंने एक मास के लिये 'ब्राह्मण' का प्रकाशन स्थगित कर दिया था। मतलब यह कि उनका कोई सहायक सम्पादक न था, अतः कांग्रेस के अधिवेशन मे शामिल होने के लिए उन्हे अपना 'ब्राह्मण' भी एक आध मास के लिये बन्द करना पड़ता था। 'ब्रेडला-स्वागत' भी उन्होंने कांग्रेस के सम्बन्ध मे ही लिखा था। उनकी 'लोकोक्ति-शतक' मे भी देश-भक्ति की पुट भरी पड़ी है, जैसे :—

१—पढ़ि कमाय कीन्हों कहा, हरो न देश कलेश।
'जैसे कंथा घर रहे, तैसे रहे विदेश।'

२—सरबस लिये जात अंगरेज,
हम केवल लेक्चर के तेज।
बिन श्रम बातें का करती हैं,
'कहुँ टोटकन गाजें टरती हैं।'

३—छोड़ नागरी सगुन आगरी,
उर्दू के रंग राते।
देशी वस्तु गँवाय विदेशी,
सो सर्वस्व ठगाते।
मूरख हिन्दू कस न लहैं दुख,
जिनका यह ढंग दीठा।
'घर की खाँड खुरखुरी लागै,
चोरी का गुड़ मीठा।'

४—भाय-भाय आपस में लरैं,
परदेसिन के पायन परैं।
दई द्वेष भारत शशि राहु,
'घर का भेदिया लंका दाहु।'

५—अपनो काम आपने,
हाथन भल होई।
परदेशिन परधर्मिन ते,
आशा नहि कोई।
धन धरती जिन हरी,
सुकरिहैं कौन भलाई।
'जोगी काके मीत,
कलंदर केहिके भाई।'

६—जिन आरम्भ शूरता कीन्ही,
विघन परत हिम्मत तजि दीन्ही।
बिरथा श्रम कर अपजस लहिगे,
'निबुआ नोन चाटि कै रहिगे।'

इन पंक्तियों के लेखक ने "ब्राह्मण" के अंक जमा करने में बड़ा परिश्रम किया था और सड़क से दूर कई गाँवों में जाकर उन्हें प्राप्त किया था। पं० गौरीशंकर दीक्षित उर्फ 'जय शिव' जी प्रताप गुरु के पास कुछ दिन बैठे थे, वे अपने पास के बहुत से अंक मुझे दे गये थे। इस संग्रह से मैंने आठ वर्ष के 'ब्राह्मण' को छाँट कर दो जिल्दें तैयार की थीं। किन्तु ४ वर्ष की एक जिल्द कोई भलेमानस मुझसे ले गये और वह आज तक वापिस नहीं मिली। दूसरी जिल्द मेरे पास है, जो कई साहित्यकों के काम आ चुकी है। इसी से पं० रमाकान्त त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक "प्रताप पियूष" के तैयार करने में बड़ी सहायता ली थी।

अभ्युदय प्रेस ने भी प्रताप गुरु के लेखों का एक संग्रह 'प्रताप निबन्धावली' के नाम से प्रकाशित किया है। पं० प्रताप नारायण जी के देहान्त के पश्चात् 'खड्गविलास प्रेस' वाले उनके सारे काग़ज़-पत्र उनकी स्त्री से ले गये थे और बहुत थोड़ा सा रुपया देकर उन्हे बहला गये थे। वहीं से पंडित जी की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं किन्तु उन पुस्तकों का यथेष्ट प्रचार नहीं हो पाया। पं० जी कानपुर के नौघड़े मोहल्ले मे रहते थे। बड़े खेद की बात है कि ऐसे साहित्यसेवी और देशभक्त का कानपुर वालों ने कोई-स्मारक आज तक नहीं बनाया—It is never too late मैंने उनकी यादगार मे पटकापुर मे एक निःशुल्क पाठशाला 'प्रताप पाठशाला' के नाम से स्थापित की थी, जो कई वर्षों तक चलती रही। और जब म्युनिसिपेल्टी की ओर से पटकापुर मे बच्चों की शिक्षा निःशुल्क हो गई तब अनावश्यक हो जाने के कारण वह पाठशाला बन्द हो गई।

जिस समय नवम्बर १९१३ मे मैंने और गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' निकाला था उस समय पत्र का नामकरण करने में मेरे ध्यान में पं० प्रतापनारायण मिश्र का नाम था। प्रताप गुरु की स्मृति की स्थापना की दृष्टि ही से मैंने 'प्रताप' के प्रथम अंक मे पं० प्रताप नारायण पर एक लेख लिखा था।

उसी प्रथम अंक में गणेश जी ने अपना लेख राना प्रताप पर लिखा। यद्यपि पत्र के नामकरण मे हम दोनो के दृष्टिकोण भिन्न थे, फिर भी 'प्रताप' नाम से हम दोनों की मंशा पूरी हो जाती थी।

प्रताप गुरु की लिखी और अनूदित कई पुस्तको और ट्रेक्टों का मैंने सग्रह किया था। परन्तु किताब-चोरो के मारे उनमे से बहुत कम बची हैं। अन्तिम चोरी सन् १९४० मे एक महाशय

द्वारा हुई जिसमें प्रतापनारायण जी के तीन ट्रेक्ट थे अर्थात् (१) मन की लहर (२) तृप्यन्ताम और (३) लोकोक्ति शतक। पं० प्रतापनारायण जी की सजीव लच्छेदार बोल-चाल की और बामुहाविरा भाषा की दृष्टि से उनकी पुस्तकों का जितना प्रचार होना चाहिए था उससे बहुत कम हुआ। क्योंकि वे ऐसे प्रकाशकों के हाथों पड़ गईं जिन्हें उनकी भाषा तथा विचारों का प्रचार करने की उतनी चिन्ता न थी जितनी अपने क्षणिक लाभ की थी। शायद अब कोई माई का लाल निकल आये क्योंकि अब पुराने लेखकों की कृतियाँ कुरेदी जा रही हैं।

जिस समय हिन्दी में लिखने वाले उँगलियों पर गिने जा सकते थे उस समय प० प्रतापनारायण ने गद्य और पद्य दोनों में काफ़ी लिखा था। उन्होंने गद्य की भाषा को लचीला और परिमार्जित बनाने में, उसमें हास्य और व्यंग की मात्रा बढ़ाकर तथा ग्रामीणता का पुट देकर उसे प्रौढ़, सुबोध और सजीव बना दिया। पद्य की भाषा के सम्बन्ध में वह ब्रज भाषा के पक्षपाती थे, हालांकि उन्होंने खड़ी बोली मे भी कविता की है। वह कहते हैं कि "जो लालित्य, जो माधुर्य, जो लावण्य कवियों को उस स्वतन्त्र भाषा मे है जो ब्रज भाषा, बुन्देलखण्डी, बैसवारी और अपने ढंग पर लाई गई संस्कृत व फ़ारसी से बन गई है, जिसे चन्द से लेकर हरिश्चन्द्र तक प्रायः सब कवियों ने आदर दिया है उसका सा अमृतमय चित्तचालक रस खड़ी और बैठी बोलियों मे ला सके यह किसी के बाप की मजाल नहीं।" इसी सम्बन्ध में दूसरे स्थान पर मिश्र जी लिखते हैं, "जो कविता नहीं जानते वे अपनी बोली चाहे खड़ी रक्खें चाहे कुदावें पर कवि लोग अपनी प्यार की हुई बोली पर हुक्म चला के उसकी स्वतन्त्र मनोहरता का नाश नहीं करने के।"

यद्यपि मिश्र जी उर्दू को "सब भाषाओं का करकट" कहते हैं पर उसे कविता के लिए बुरा नहीं समझते। मिश्र जी ने खड़ी बोली में भी कविताएँ लिखी हैं जो सामयिक और शिक्षाप्रद विषयों पर होती थीं। आप हिन्दी उर्दू, फारसी, संस्कृत, बंगला अंगरेज़ी आदि कई भाषाएँ जानते थे। जब उन्हें हँसोड़पन सूझता तो उर्दू मे कविता लिखते थे। 'तृप्यन्ताम' में उनकी उर्दू कविता का नमूना यह है :—

देख तुम्हारे फ़रज़न्दो का,
तौरो-तरीक़ तुआमो कलाम।
ख़िदमद कैसे करूँ तुम्हारी,
अक़्ल नही कुछ करती काम।
आबे गंग नज़र गुज़रानू,
या कि मये-गुलगूँ का जाम।
मुन्शी चितरगुप्त जी साहब,
तसलीम कहूँ या तृप्यन्ताम॥

'मन की लहर' की एक लावनी में मिश्र जी लिखते हैं :—

दीदारी दुनियादारी सब नाहक का चलभेड़ा है।
सिवा इश्क के जहाँ जो कुछ है निरा बखेड़ा है॥
दुनिया क्या शै है ? क्यों है ? क्या इसका अव्वलो आख़िर है ?

बाद मौत के कहाँ जाना है, क्या होना फिर है ?
इन बातों का ठीक हाल नहिं हुआ किसी को ज़ाहिर है।
झूठी बकबक मचाता हर मोमिन औ क़ाफ़िर है॥
इन झगड़ों को कहिए तो कब किसने कहाँ निबेड़ा है ?'
सिवा इश्क़ के, जहाँ जो कुछ है निरा बखेड़ा है॥

एक पुरानी उर्दू गजल पर गिरह लगाते हुए पंडित जी फ़र्माते हैं :—

मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने,
'कहे देती है शोख़ी नक्शेपा की।'
पुलिस ने और बदकारों को शह दी,
'मरज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।'
खबर हाकिम को दें इस फ़िक्र में हाय,
'घटा की रात और हसरत बढ़ा की।'
कहा अब हम मरे साहब कलक्टर,
'कहा मैं क्या करूँ मरजी ख़ुदा की।
कोई पूछे तो हिन्दुस्तानियों से,
'कि तुमने किस तवक्क़ा पर वफ़ा की।'
उसे मोमिन न समझो ए बिरहमन,
'सताये जो कोई ख़िलक़त ख़ुदा की।'

प० प्रतापनारायण जी के गद्य और पद्य दोनों में यह विशेषता है कि गम्भीर विषयों पर लिखते समय भी वे रोजमर्रा के बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते थे। उनमें बनावटीपन छू तक नहीं गया था।

उन्होंने अपना जीवन-चरित्र लिखना शुरू किया था किन्तु वह अधूरा रह गया। उससे मालूम होता है कि वे उन्नाव जिले के बैंजे गाँव के रहने वाले थे और उनका जन्म संवत् १९१३ में हुआ था। उनके पिता का नाम प० संकठा प्रसाद मिश्र था, जो एक अच्छे ज्योतिषी थे। पं० प्रतापनारायण की अंगरेजी शिक्षा रामगंज मिशन स्कूल में हुई किन्तु वे वहाँ भी बहुत दिनों तक न टिक सके। और यद्यपि उनकी शिक्षा यथावत् न हो पायी थी किन्तु व थे बहुत जिन्दादिल, मस्त और रिंद होते हुए भी उन्हें

अपनी संस्कृति का गर्व था। "जिस तरह सब जहान में कुछ हैं, हम भी अपने गुमान में कुछ हैं।" एक स्थान पर पं० जी लिखते हैं :—

चहहु जो साँचहु निज कल्याण,
तौ सब मिलि भारत सन्तान।
जपहु निरन्तर एक ज़बान,
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥
भाषा, भोजन, भेष विधान,
तजै न अपनो सोइ मतिमान।
अस समझौ सौभाग्य प्रमान,
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥
जिन्हें नहीं निजता का ज्ञान,
ते जन जीवित मृतक समान।
याते गहु यह मंत्र महान,
हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान॥

पं० प्रतापनारायण के समय में प्रेसों का बाहुल्य भी इतना न था जितना कि आज है; और न कागज़ ही पर्याप्त रूप से ठीक-ठीक मिलता था। इस बात का प्रमाण 'ब्राह्मण' के कुछ अंक हैं, जिन्हें देखने से पता चलता है कि कभी-कभी उन्हें अपना पत्र आधा पर भी छपवाना पड़ा है और कुछ अंकों का कागज भी घटा रहा है। कदाचित पैसे की कमी से भी कभी-कभी ऐसा हुआ होगा। बहरहाल उनके लेखों और कविताओं को पढ़ने से मनोरंजन के साथ-साथ देशभक्ति, समाज-सुधार और इन्सानियत की तथा हिन्दू-सभ्यता की शिक्षा अनायास मिल जाती है। पं० प्रतापनारायण का नाम लेना और कोई मनोरंजन की बात याद न आना तनिक कठिन-सा मालूम होता है।

पं० प्रतापनारायण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को अपना गुरु मानते थे और उनके निधन पर 'ब्राह्मण' में 'हरिश्चन्द्राब्द' लिखना शुरू कर दिया था। भारतेन्दु की तरह 'प्रताप हरी' भी नाटकों के बड़े शौक़ीन थे। उन्होंने कई वार अपनी नाटक मण्डली में जनाने और मर्दाने पार्ट किये थे। आप बड़े अभिनय चतुर थे। एक बार पार्ट करने में जब उन्हें अपनी मूछें मुड़वानी पड़ीं तो उन्होंने अपने पिता जी से कहा कि 'आपके होते हुए भी मुझे ऐसा करना पड़ा इसका मुझे दुःख है। परन्तु मजबूरी थी।' हिन्दुओं में उस समय अधिक और आजकल कम, पिता के सामने मूछें बनवाना अशुभ समझा जाता है। उनकी नाट्य-मण्डली में श्री राधेलाल अग्रवाल और स्वामी ब्राक्टानन्द आदि कई सज्जन थे। एक बार पं० प्रतापनारायण और राधेलाल में कुछ खटपट हो गई और दोनों ने अपने-अपने नाटक अलग किये। राधेलाल अपने नाटक में घसियारा बने और अपनी घसियारिन से बोले :—

"कहाँ गई मेरी नास की पुड़िया,
कहाँ गई मेरी बोतल।
उसको पीकर ऐसे नाचूँ
जैसे टट्टू कोतल।"

यह थी फबती पं० प्रतापनारायण पर। दूसरे शनिवार को जब पंडित जी ने अपना नाटक खेला तो वे मल्लाह बन कर अपनी मल्लाहिन के साथ आकर गाने लगे :—

"खत्री बाम्हन सबै पियत हैं,
बनिया आगरवाला।
हम मल्लाहन पीय लई तो,
हँसेगा क्या कोई साला।"

यह चोट थी श्री राधेलाल अग्रवाल पर।

पं० प्रतापनारायण जी के ज़माने में अकसर बाजारों में ईसाई पादरियों के उपदेश हुआ करते थे। पं० प्रतापनारायण बहुधा उनसे भिड़ जाया करते थे। एकबार का ज़िक्र है कि एक ईसाई उपदेशक ने कहा कि हिन्दू गौ को माता कहते हैं तो बैल उनका पिता हुआ। मिश्र जी ने कहा कि "ठीक है, नातेदारी से कैसे इन्कार किया जा सकता है।" तब पादरी साहब बोले कि मैंने एक बैल को 'मैला' खाते देखा है। तुरन्त पं० प्रतापनारायण ने जबाब दिया कि "वह ईसाई हो गया होगा।" जवाब सुनकर पादरी साहब का मुँह फक हो गया और सारे दर्शक खिलखिला उठे। एक अन्य मौके पर बहस करते हुये एक ईसाई ने पडित जी से पूछा कि "आप कौन सा शास्त्र मानते हैं?" पडित जी ने उत्तर दिया कि "मैं तो कोकशास्त्र मानता हूँ। इसी के अनुसार हम सब की सृष्टि होती है। हम लोग ईसामसीह की तरह कोकशास्त्र के विरुद्ध पैदा होने वाले नहीं हैं।"

पं० प्रतापनारायण अंगरेजो की ट्यूशन करते थे और उन्हे उर्दू पढ़ाया करते थे। ऐसा महान आदमी और कुछ चाँदी के टुकड़ो के लिये उसे ट्यूशन करना पड़े। इसी को विधि की विडम्बना कहते हैं।

मिश्र जो स्वभाव के बड़े आलसी थे। उनके बैठने का स्थान बड़ा गन्दा रहता था और पुस्तकें, कागज़-पत्र आदि अस्त-व्यस्त पड़े रहते थे। एक बार जब पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर उनसे मिलने आये, तो उन्होंने हाथ से थोड़ा-सा स्थान झाड़ दिया और उनसे कहा, 'बैठिये'। थोड़ी देर बातचीत करने के पश्चात् दो पैसे के पेड़े मँगवा कर उन्हे जलपान करवा दिया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से लेकर मामूली लावनीबाजो और फटकेबाजो तक मे उनके मित्र-

गण थे अर्थात् हर फ़िरक़े में उनके मित्र मौजूद थे जो इनकी प्रतिष्ठा करते थे, यह थी उनकी लोकप्रियता।

सुना है कि पं० प्रतापनारायण उँगली की तरह अपना कान भी हिला लेते थे जिससे अकसर पास में बैठे हुए लोगों का मनोरंजन हो जाया करता था। उन्हें हुलास सूँघने और तमाखू खाने की भी लत थी जिसे उन्होंने अपनी 'बुढ़ापा' शीर्षक कविता में बड़े अच्छे ढंग से कहा है :—

दाढ़ी नाक याकमां मिलि गै,
बिन दाँतन मुँह अस पोपलान।
दाढ़ि ही पर बहि-बहि आवति है,
कबौ तमाखु जो फाँकत।

सारांश यह कि सब कुछ होते हुए पं० प्रतापनारायण जी मिश्र एक महापुरुष, कट्टर देशभक्त, सच्चे समाज-सुधारक और हिन्दी के जन्मदाताओं में से एक थे। अतः उनका स्मारक अवश्य स्थापित होना चाहिए। उसका रूप जो कुछ भी हो। मेरी निजी दृष्टि में जब तक साप्ताहिक 'प्रताप' जीवित है तब तक उनका एक स्मारक तो बना ही रहेगा। और दूसरा मेरे एक पुत्र का नाम भी प्रताप है। किन्तु पं० प्रतापनारायण का एक सार्वजनिक स्मारक कानपुर में और यथासम्भव नौबड़ा में अवश्य बनना चाहिये।

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक के प्रथम दर्शन सन् १९०५ मे बनारस कांग्रेस के अवसर पर हुए थे और उनका प्रथम व्याख्यान काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के मैदान मे देवनागरी लिपि पर सुना था। व्याख्यान सुनकर हृदय पर यह असर पड़ा कि तिलक महाराज कोई Orator (अच्छे वक्ता) नही है, किन्तु अपनी बात स्पष्ट रूप से और तर्क के साथ कहते हैं। उनकी शक्ल तो बड़ी सुन्दर नही है परन्तु वह प्रतिष्ठा करने की आज्ञा देती है। दर्शन कर उनके प्रति मान प्रतिष्ठित करना स्वाभाविक हो जाता है। उनमे महान पांडित्य था और अपना पक्ष समर्थन करने की अपार योग्यता। उनके भक्तो की संख्या पर्याप्त थी, और विशेष करके युवक ही उनके अनुयायी थे। राजनीति मे उनकी एक विचारधारा अलग ही थी, जो उस समय के कांग्रेस के कर्णधारो से नही मिलती थी। इसी विचारधारा के कारण बनारस से ही उनके गरमदल की नीव पड़ी। मुझे भी उन्ही की बातों मे अधिक आकर्षण हुआ। अतः मै भी एक प्रकार से उन्ही का अनुयायी बन गया। किन्तु राजनीति मे मेरा यह पहला ही कदम था।

देश के राजनैतिक आकाश मे तिलक महाराज की धाक थी। जिस समय कलकत्ते मे १९०६ की कांग्रेस हुई उस समय कांग्रेस के सभापति न होते हुए भी उनके स्वागत के लिये एक अलग स्वागत-समिति बन गई थी और जो बीज बनारस मे बोया गया था उसने ज़मीन से अपने किल्ले निकालना शुरू कर दिया और

अब प्रत्यक्ष रूप से उसकी चर्चा कलकत्ते में हुई। इस पौधे ने सूरत में जाकर अपना संगठित रूप धारण किया। सूरत में तिलक महाराज कांग्रेस के अधिवेशन से पहले ही पहुँच गये थे और अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे। जिस समय कांग्रेस के नरम दल के नेताओं ने उनकी बात नहीं मानी अर्थात् स्वदेशी, बायकाट, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्य को कांग्रेस कार्यक्रम में स्वीकार करने से इनकार किया, तो उन्होंने मनोनीत सभापति (रास बिहारी घोष) के निर्वाचन ही का विरोध करना शुरू कर दिया। परिणाम स्वरूप अधिवेशन मे हुल्लड़ मच गया और कुर्सियाँ चलने लगीं। देश के नेताओं की यह दशा देखकर मैं तो सचमुच रो रहा था परन्तु मैं कर ही क्या सकता था, क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरवा! अलबत्ता लाला लाजपत राय ने दोनों दलों को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया। परन्तु वे भी निष्फल रहे। इसके पश्चात् तिलक महाराज ने गरमदल वालों की एक कान्फरेन्स अलग की, जिसके सभापति श्री अरविन्द घोष थे। मैं भी इसमें शामिल हुआ और कई दिन बराबर तिलक महाराज, सरदार अजीतसिंह, श्री अरविन्द घोष, कालपत्र के सम्पादक महादेव परांजपे, आफताब के सम्पादक सैयद हैदररजा आदि के ख़ूब भाषण सुने। यहीं मुझे तिलक महाराज को नजदीक से देखने का अवसर मिला। तिलक महाराज ने अपने कार्यक्रम को स्पष्ट रूप से रखा और वह चतुर्मुखी कार्यक्रम सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया।

तिलक महाराज की वेशभूषा बिलकुल साधारण थी, सर पर मराठी पगड़ी, शरीर पर एक बगलबन्दी जिसकी एक आध तनी खुली हुई, टाँगों पर एक ढीलीढाली धोती और पैरो मे सूतकरिया अर्थात् मराठी जूता। किन्तु अपनी बात का अकट्य और स्पष्ट रूप से रखने मे हिमालय की तरह दृढ़। यही कारण था कि

देश ने उनके कार्यक्रम को स्वीकार किया। एक दिन महाराष्ट्र केम्प में भोजन करने जाते समय भी उन्हे देखा। देखा कि नंगे बदन केवल धोती पहने और चोटी फटकारते सबके साथ खाने ऐसे जा रहे थे कि मानो उनमे और अन्य लोगों मे कोई भेद ही नहीं है। सबमें घुलमिल कर रहने का उनका यही गुण था जिसने उनको जनता के हृदय-मन्दिर का देवता बना दिया था।

वे इतने लोकप्रिय थे कि उस समय उनके मराठी केसरी की ३५००० प्रतियाँ निकलती थी और एक-एक प्रति को कम से कम ५ आदमी तो अवश्य पढ़ते थे। सूरत कांग्रेस के बाद ही 'हिन्दी केसरी' का भी जन्म हुआ और मैं भी उसका नियमित पाठक बन गया, क्योंकि उसमें तिलक महाराज के लेखों का अनुवाद मिलता था। इस पत्र के सम्पादक श्री माधवराव जी सप्रे थे, जो लोकमान्य के अनन्य भक्त थे। तिलक महाराज पर Cult of the Bomb पर लेख लिखने लिये जो मुकदमा हुआ था उसमें ६ वर्ष की सज़ा का फ़ैसला सुनने पर जो वाक्य उन्होने कहे थे उन्हीं का हिन्दी अनुवाद 'हिन्दी केसरी' के अग्र-लेख के ऊपर लिखा रहता था। अगरेजी के शब्द ये थे—

"In spite of the verdict of the jury I maintain that I am innocent, and it is the will of the providence that the cause which I represent may be benefited more by my suffering than by my freedom."

यद्यपि आज जूरी ने मुझको,
अपराधी ठहराया है।
तो भी मेरे मन ने मुझको,
निर्दोषी बतलाया है।
ईश्वर का संकेत मनोगत,
दिखलाई यह मुझे पड़े।

मेरे संकट सहने ही से,
इस हलचल का तेज बढ़े।

पत्र के मुख-पृष्ठ पर नित्य एक महत्वपूर्ण वाक्य लिखा रहता था :—

रे गयन्द मति अन्ध छिनहु समुचित तोहि नाहीं।
घसिवो अब यह विपिन घोर दुर्गम भुवि माहीं।
गज शिलान सो जानि नखन सो विद्रावति करि।
गिर कन्दर में परयो आज निद्रित यह केहरि।

तिलक महराज ने जो पुस्तकें लिखी हैं उनसे उनकी विद्वता और महानता प्रकट होती है। वे केवल भारत की ही वस्तुएँ नहीं रहीं किन्तु उनका सम्बन्ध सारे संसार से है। उनकी पुस्तकों में से 'Arctic Home in the Vedas'; 'Orion' और 'गीता रहस्य' संसार के अमूल्य रत्न हैं। 'हिन्दी केसरी' के साथ उनके 'व्याख्यान संग्रह' और 'गीता रहस्य' भी मैंने पढ़े। और जैसा गांधी जी ने अपने को एक छोटी-सी नदी और तिलक महाराज को महान सागर की उपमा देते हुये उनकी विद्वता और पाण्डित्य का वर्णन किया है, वैसा ही मैंने उन्हें पाया—

"सार्वजनिक मामलों में वह किसी की रू-रियायत नहीं करते थे और बड़ी निर्दयता से प्रहार करते थे। अपने राजनैतिक शत्रु को अपनी चोटों से बचने का बहुत कम अवसर देते थे। वह बड़े निर्भय थे।"‡

उन दिनों देश में "लाल-बाल-पाल" की तूती बोलती थी और उन्हीं की बात सर्वमान्य थी। हमारे मोहल्ले के एक माली ने एक कविता बनाई थी जिसकी दो लाइनें इस प्रकार हैं :—

---

‡ He was coolly ruthless when public affairs were concerned. He rarely allowed any political antogonist to escape his hits.

"लाल, बाल, और पाल कहें ये सुनके ख्याल ना भौं तानो।
छोड़ो सब अंग्रेजी चीजें, चलन स्वदेशी पहचानो।"

मौलाना हसरत मोहानी भी उनके शिष्य थे और उनका कहना है कि उन्होने कभी किसी मनुष्य की तारीफ में कोई कविता नहीं की, किन्तु तिलक महाराज के निधन पर उन्होंने भी कुछ पक्तियाँ लिखी थी जो उन्होने उनकी अस्थियों के संगम में प्रवाह के समय प्रयाग जाते हुए मुझे सुनाई थी। वे नीचे दी जाती हैं:—

आलम मे मातम क्यो हो न बपा,
दुनिया से सिधारे आज तिलक।
बलवन्त तिलक, महाराज तिलक,
आजादों के सरताज तिलक।
जब तक वह रहे दुनिया मे रहा,
हर एक दिल पर क़ाबू उनका।
अब होके नजर से पोशीदा,
रूहों पे करेंगे राज तिलक॥

सन् १९०८ से लेकर १९१५ तक तिलक महाराज कांग्रेस मे नहीं शामिल हुए। सन् १९१६ मे आपस में और हिन्दू-मुसलमानों में भी समझौता हुआ। तब पुनः लोकमान्य कांग्रेस मे आये और इसी लखनऊ कांग्रेस मे गांधी जी भी कांग्रेस मे सम्मिलित हुए। उन दिनों विषय निर्धारिणी समिति के सदस्य कांग्रेस के अधिवेशन ही के समय प्रान्तवार चुने जाते थे। किम्वदन्ती है कि लोकमान्य ने गांधी जी को अपने एक पट्ठे के मुकाबिले में हरवा दिया और फिर उन करंदीकर महाशय से स्तीफा दिलवा कर गांधी जी को चुनवा दिया और अपनी पार्टी का प्रभाव दिखला दिया। इसी कांग्रेस के अवसर पर मैंने

तिलक महाराज को कानपुर आने का निमंत्रण दिया। उस समय लखनऊ में उपस्थित कानपुर का कोई भी सज्जन उन्हें निमत्रण देने जाने के लिये तैयार नहीं हुआ। अतः मैं ही अकेला बड़े संकोच के साथ उन्हें कानपुर के लिये आमंत्रित करने के लिये छेदोलाल की धर्मशाला पहुँचा, जहाँ तिलक महाराज ठहरे हुये थे। सौभाग्य से धर्मशाला के फाटक पर लाला देवीदास जी भगत मिल गये और उन्होंने कानपुर का निमंत्रण स्वीकार कराने में मेरी बड़ी मदद की। उस समय लोग तिलक महाराज के नाम से डरते थे। जिस समय वह कानपुर आये तो कोई उन्हें अपने यहाँ ठहराने को तैयार न हुआ। अतः बाध्य होकर उन्हें और उनके साथी खापर्डे जी को सन्तोषचन्द्र की धर्मशाला में रेल-बाजार में ठहराना पड़ा। कोई संस्था उनके व्याख्यान के लिये नोटिस निकालने को आगे नहीं आई। तब मेरी प्रिय संस्था विक्रम-नाट्य-समिति के सभापति बाबू शिवप्रसाद ने अपने नाम से नोटिस निकाला। तिलक महाराज के व्याख्यान की डुग्गी पीटने की रंजिश के कारण मेरे मित्र पं० गिरजानन्दन को २७ दिन हवालात में रहना पड़ा। परेट के मैदान में जब लोकमान्य का व्याख्यान हुआ तो कोई महानुभाव सभापति होने के लिये नहीं मिला। इस पर रायबहादुर प० विश्वम्भरनाथ टुनल, अवसरप्राप्त गवर्नमेन्ट स्कूल के हेडमास्टर आगे आये और उन्होंने कानपुर की नाक कटने से बचाई। सारा कानपुर परेट के मैदान पर लोकमान्य के दर्शनों के लिये उमड़ पड़ा और वहाँ तिल रखने की जगह न रही।

जिस समय १९२० में ३१ जुलाई की रात का अन्त और १ अगस्त का शुरू हुआ उस समय लोकमान्य की इहलोक-लीला समाप्त हुई। उनके निधन से सारे देश में शोक का तूफान-सा उमड़ पड़ा और देश के कोने-कोने से असंख्य जनो की शोक

सभायें हुईं, सैकड़ो कविताएँ बनी और लोगो ने अपनी हार्दिक वेदना का प्रकाशन किया और प्रमाणित कर दिया कि तिलक महाराज वास्तव मे लोकमान्य थे। जिनके हृदय मे तनिक भी गर्मी थी, और प्रायः युवकों के तो वह प्राण थे। Mr. W S Churchill ने जो वाक्य Mr A J. Balfour के सम्बन्ध मे कहे हैं वे अक्षरशः तिलक महाराज के बारे मे सत्य है :—

"उन्हे युवकों से प्रेम था, वे उनकी माँगे स्वीकार कर लेते थे और उन्हे प्रोत्साहन देते थे। उनके हृदय मे सदा तरुणो की-सी उमंग थी किन्तु साथ ही वह आप मे यह भाव उत्पन्न करते थे कि उनमे युगो का ज्ञान संग्रहीत है।"*

दूसरे स्थान पर एक ऐसा ही वाक्य और है :—

"वह स्वयं तो कभी घबड़ाते ही न थे और न परेशान होते थे बल्कि अपने आस-पास के रहने वाले लोगो मे अपना सद्गुण बहुत कुछ प्रदान कर देते थे। अत्यन्त दुःखदायी और घबड़ा देने वाली परिस्थितियो मे वह प्रत्येक मनुष्य को शान्तचित्त अवस्था में ले आते थे और उसको अपने साथ लेकर सुगमता से उक्त कठिनाइ से पार लगा देते थे।"†

---

*He loved youth, and accepted, nay, encouraged its demands In mind he was always young, and yet he inspired the feeling that he possesed the wisdom of the ages.

† Not only was he never embarassed or at a loss himself but he seemed to impart this gift in large measure to any company while he was among them He put everyone at their ease and sailed with them smoothly through the most disconcerting and painful situations

प्रत्येक १ अगस्त को भारतवासी, लोकमान्य के निधन के बाद से, तिलक-दिवस मनाते हैं और उनको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। सन् १९२३ की पहली अगस्त को जब मैं ऐसे ही एक जुलूस और सभा से घर लौटा तो क्या देखता हूँ कि मेरे पाँचवें पुत्र का जन्म हो गया है अतः मैंने उसका नाम 'तिलक' रख दिया। जिस दिन १९२१ मे लोकमान्य का स्वर्गारोहण हुआ था उसी दिन मैंने और मेरे मित्र श्री जो० जो० जोग ने तिलक महाराज का एक स्मारक कानपुर में स्थापित करने का संकल्प किया था। ईश्वर की कृपा से हम लोगों का वह संकल्प पूरा हुआ और ६० हजार रुपये की इमारत, कानपुर का तिलक हाल, हमें तथा कानपुर के प्रत्येक राजनैतिक कार्यकर्ता को लोकमान्य को याद दिलाता रहता है और हमें स्मरण कराता रहता है कि "महापुरुषों के जीवन का स्मरण करके हम अपने जीवन को महान बना सकते हैं।"

इस तिलक हाल की नींव पं० जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९३१ मे रखी थी और १९३४ की २४ जुलाई को महात्मा गांधी ने उसका उद्घाटन किया था। १ अगस्त १९४१ को इन पंक्तियों के लेखक ने तिलक महाराज के व्याख्यानों से कुछ वाक्य चुन कर उनके हिन्दी अनुवाद के सहित, "तिलक-वचनामृत" के नाम से एक पुस्तिका भी प्रकाशित की है। तिलक महाराज हमारे लिये एक अमर वाणी छोड़ गये हैं, जो हम सब का मूल-मन्त्र है—"स्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है और मैं उसे प्राप्त करूँगा।"

उनके अन्य उपदेशों मे से कुछ ये हैं :—

१—एक समान भाषा राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण अंग है। यदि एक राष्ट्र को एक सूत्र मे बाँधना है तो सबके लिये

एक भाषा करने के अतिरिक्त कोई दूसरी प्रबल शक्ति नहीं है।

२—प्रार्थना, कृपा और विरोध का कोई अर्थ नहीं होता जब तक कि उनके पीछे दृढ़ शक्ति न हो।

३—हमें वर्तमान का अध्ययन करना चाहिये और ऐसा कार्य-क्रम निकालना चाहिये जो वर्तमान परिस्थिति का सामना कर सके।

४—राजनीति मे उदारता या भलाई करने की भावना नही होती। स्वार्थ को घोषणाओ पर मिठाई का आवरण चढ़ाने के लिये उदारता का प्रयोग किया जाता है।

५—कर्तव्य के पथ पर गुलाबजल नही छिड़का रहता और न उस मार्ग पर गुलाब के फूल उगते हैं।

६—अपनी संकल्प-शक्ति की वृद्धि करो। संकल्प-शक्ति की वृद्धि करने ही का नाम प्रार्थना है। प्रार्थना में ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा सारी रुकावटों पर विजय प्राप्त हो जाती है।

७—महान वस्तुएँ सरलता से नहीं प्राप्त होतीं और जो चीजें सरलता से मिल जाती है वे महान नही होतीं।

८—दूसरो के मुँह से पानी नहीं पिया जा सकता, हमे स्वयं उसे पीना होगा।

९—चाहे धर्म हो और चाहे राजनीति दोनो मे दृढ़ता की आवश्यकता है। और मन की दृढ़ता बिना साहस के नही आती।

१०—जिस राष्ट्र मे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता प्रकट करने का मार्ग और अपनी उन्नति करने की स्वतन्त्रता होती है, उसमे सद्गुणों की वृद्धि होती है।

११—भोजन प्राप्त करना ही मनुष्य का उद्देश्य नहीं है। कुटुम्ब का पालन-पोषण करना ही मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। एक कौवा भी तो जीवन व्यतीत करता है और जो कुछ उसे दिया जाता है उसे खाता है।

१२—संसार की सेवा करना, और इस प्रकार ईश्वर की इच्छा की पूर्ति करना, मोक्ष का बिल्कुल निश्चित मार्ग है, और इसका अनुसरण संसार में रहकर हो सकता है न कि उससे दूर भाग कर।

१३—मैं नरक मे भी उत्तम पुस्तकों का स्वागत करूँगा, क्योंकि इनमें वह शक्ति है कि जहाँ ये होंगी वहाँ आप ही स्वर्ग बन जायगा।

१४—हमारा कहना यह है कि तुम अपनी शक्तियाँ संगठित करो अपने बिखरे हुए बल को एकत्र करो और तब काम करने में लग जाओ। ऐसा करने पर कोई तुम्हारी माँगों से मुँह नहीं फेर सकता।

१५—देशभक्त को अपने मार्ग मे आने वाली बड़ी से बड़ी विघ्न-बाधाओं से भी विचलित नहीं होना चाहिये। उसे उचित है कि वह हरएक कठिनाई का वीरता और धीरता के साथ सामना करे। यदि उसका कार्य बहुत ही कठोर है तो उसे समझ लेना चाहिये कि अपने चरित्र को सहनशील, सहिष्णु और बलवान बनाने का बहुत ही अच्छा मौक़ा ईश्वर ने उसे दिया है।

तिलक महाराज का जीवन चरित्र कई महानुभावों ने लिखा है। किन्तु श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर द्वारा लिखित लोकमान्य का जीवन चरित्र एक वृहत् और प्रमाणित ग्रन्थ है। उसको पढ़ने से लेखक ने ये निष्कर्ष निकाले हैं :—

१—लोकमान्य की बातें स्पष्ट और सीधी होती थीं वे घुमा-फिरा कर बात नहीं कहते थे और न उनकी बातों में शब्दाडम्बर ही होता था।

२—जिस क्षेत्र में उन्होंने प्रवेश किया, उसमें उनका अगुआ होना निश्चित ही था।

३—वे अपने लक्ष्य से कभी भी इधर-उधर नहीं मुड़ते थे। उनमें अपने उद्देश्य की अडिग उपासना, अदम्य उत्साह और सकल्प की दृढ़ता थी।

४—उनके राजनीतिक अगुआ होने का कारण न उनका धन था, न उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा, न पेशे की सफलता, न सरकारी मान और न जोशीली व्याख्यान-शक्ति। उनका व्यक्तित्व और उनका देश के लिये सब कुछ निछावर करना ही सारे देश पर उनका प्रभुत्व स्थापित करने के लिये पर्याप्त थे। उनमें विभिन्न प्रकार की असाधारण शक्तियाँ थीं और वे जीवन के अनेक मार्गों में उच्चतम स्थान और स्थायी प्रसिद्धि पा सकते थे। वे संस्कृत के महान पण्डित, एक प्रभावशाली लेखक और चतुर तथा सूक्ष्म विचारक थे। उनके 'ओरियन' और 'आर्किटिकहोम इन दी वेदाज' नामक ग्रन्थों ने सारे ससार पर उनकी विद्वता का सिक्का जमा दिया है। उनका 'गीता-रहस्य' एक उच्चकोटि का चिरस्मरणीय ग्रन्थ है।

५—वे अपने अनुयायियों में उन्हीं के समान होकर विचरते थे, उनसे पूर्ण समता का व्यवहार करते थे, उनके साथ सरलता और आपस का मेल-जोल रखते थे। वे केवल शिक्षितों ही के नेता न थे बल्कि जनता, व्यापारी, व्यवसायी, ग्रामीण और किसानों के भी अगुआ थे।

६—उनकी महापुरुषों की-सी प्रतिभा उनके विद्यार्थी जीवन से लेकर उनकी अन्तिम अवस्था तक प्रत्येक दशा में अपनी छटा दिखाती रही।

७—लोक-सेवा की धुन के अतिरिक्त और कोई भी धुन उनके जीवन में दिखाई नहीं देती।

८—स्वदेश-प्रेम के साथ ही साथ विद्या प्रेम भी उनके जीवन का एक विशेष अंग था। देशसेवा के साथ साहित्य-सेवा और विद्या-व्यसन उनके जीवन में विशेष रूप से लगे हुए थे।

९—उन्होंने अपनी विद्या और बुद्धि का उपयोग अपने देश के उद्धार करने में निस्संकोच होकर किया और इस मार्ग में जो संकट आये उन्हें धैर्य के साथ झेला।

लाला लाजपतराय

श्री गोपाल कृष्ण गोखले के सभापतित्व मे होने वाली बनारस कांग्रेस मे जिस समय श्री सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी व्याख्यान देने खड़े हुए उस समय बड़ी करतल ध्वनि हुई क्योंकि उस ज़माने मे वही सबसे अच्छे व्याख्यानदाता समझे जाते थे। किन्तु उनके बाद जब पं० मदनमोहन मालवीय बोल चुके तो लोग कहने लगे कि मालवीय जी ने सुरेन्द्रनाथ बेनर्जी को मात कर दिया। किन्तु इसके पश्चात् जब लोगो ने लाला लाजपतराय का भाषण सुना तो ऐसी तुमुल करतल-ध्वनि हुई कि सारा पण्डाल गूँज उठा और हरेक की ज़बान से यही शब्द निकला कि आज के दिन लालाजी से बढ़ कर बोलने वाला और कोई नहीं है। उनकी भाषा मे वह ओज और मर्दानगी थी तथा उनके कहने का ढग ऐसा धारा-प्रवाह का था कि आदमी की बोटी-बोटी फड़क उठती थी। उन्होने गवर्नमेन्ट से प्रार्थना करने के बजाय अपनी माँग (Demand) शब्द का प्रयोग किया था जो आज तक कांग्रेस के मंच पर किसी ने कहीं किया था। इस अधिवेशन की सबसे बढ़िया और जाशीली स्पीच लालाजी की ही समझी गई। इन पंक्तियो के लेखक ने लाला जी की यह पहली स्पीच सुनी थी। जिस समय श्रीमती सरला देवी चौधरानी ने बन्देमातरम् गीत गाया था उस समय जनसमूह से भरे हुए सारे पण्डाल मे एकदम खामोशी (Pin-drop silence) हो गई थी। किसी ने गान के समाप्त होने पर Once more (पुनर्वार) की आवाज़ लगाई थी। उस समय लालाजी ने ऐसे ज़ोर की डॉट बताई कि सब दंग रह गये और फिर कोई आवाज़ नही सुनाई दी।

१९०७ के 'माडर्न रिव्यू' Modern review में लालाजी का एक लेख National outlook (राष्ट्रीय दृष्टिपात) के नाम से निकला था। उसके पढ़ने के पश्चात् मैं अपना 'ओम का जाप' करना छोड़ बैठा और अब से मेरी सारी शक्ति राष्ट्रीय प्रवृत्ति की ओर लग गई। उस लेख में हमारी दशा का वास्तविक चित्र और हमारी सम्भाव्य शक्तियों का दिग्दर्शन कराया गया है और कहा गया है कि यदि हम अपने मनमें ठान लें तो हम सब कुछ कर सकते हैं।

अब तो लालाजी मेरे राजनैतिक गुरु बन गये और इलाहाबाद तक मैं उनके व्याख्यान सुनने जाने लगा। आगे उनके बीसों व्याख्यान सुने और उनमें मुझे पूरी श्रद्धा हो गई। उनकी वाणी में वह बल था कि सुनने वालों को उनकी बात सुन कर वीरता का आवेश आ जाता था। पैंतरे से खड़े होकर और एक हाथ ऊपर उठाकर तथा दूसरा कमर पर रख कर वह ऐसे बोलते थे कि मानो कोई सिंह गरज रहा है। इन्हीं दिनों मैंने उनके अंगरेजी के पुराने लेखों का संग्रह करके मद्रास की गणेश कम्पनी के यहाँ छपवाया था जो "Lala Lajpat Rai, The man in his word" के नाम से छपा था और जिसकी २५० प्रतियाँ मुझे संग्रह के पुरस्कार स्वरूप मिली थीं। इस पुस्तक की कुछ प्रतियाँ बेंच कर मैंने सूरत कांग्रेस देखी थी और बम्बई की सैर की थी। सूरत कांग्रेस में लालाजी ने बड़ा ही प्रयत्न किया था कि नरमों और गरमों का मामला तय हो जाये। परन्तु नरमों की जिद के सामने एक न चली। उनका हृदय गरमदल वालों के साथ था परन्तु वे शामिल हुए नरमों की सभा में। उनके इस कार्य की आलोचना करते हुये लाला हरदयाल ने "खयालात लाजपत" की भूमिका में लिखा है कि "आप महापुरुष है और मैं आपके ज़ेरसाया काम करना बायसे फख़ समझता हूँ। परन्तु

सूरत मे आपका गुलामो की वर्दी पहनना आपकी शान के खिलाफ था।" जिस समय इलाहाबाद के कन्वेन्शन मे लालाजी दस्तखत करके लौटे उस समय लाला हरदयाल कानपुर ही मे थे। वह उनसे मिलने स्टेशन गये और लालाजी के तार के अनुसार मैं उनके खाने के लिये अपने घर से रोटी बनवा कर हरदयाल जी के साथ गया था। लालाजी के लिये रोटी ले जाने मे मुझे वही मजा आया था जो एक भक्त को भगवान के भोग लगाने में आता है। मेरे वैष्णव घर में उस समय घर से बाहर रोटी ले जाना एक अचम्भे की बात थी। जब हम लोग स्टेशन पहुँचे उस समय लालाजी के साथ श्री सुन्दरलाल भी थे। लाला हरदयाल ने अपनी बातें लाला लाजपतराय से ऐसे ढंग से कहीं कि लालाजी लाजवाब हो गये।

एक बार इलाहाबाद के मेओहाल में नरमो की एक कान्फ़रेन्स होने वाली थी और श्री सुन्दरलाल ने उसे भग करने का निश्चय कर लिया था। किन्तु उक्त कान्फरेंस के एक-दो दिन पहले "स्वराज्य मैदान" में लालाजी का व्याख्यान था। मैं भी कानपुर से लालाजी का व्याख्यान सुनने गया था। उसमे लालाजी ने सुन्दरलाल जी और उनके साथियो को आदेश दिया और प्रतिज्ञा करा ली कि वे लोग किसी प्रकार का उत्पात न करेंगे और यदि सभा भग हुई तो वह उसे अपने ऊपर एक कलंक समझेंगे। फलस्वरूप उनकी आज्ञा का पालन हुआ और नरमो की सभा में कोई गड़बड़ी नहीं हुई। अगर लालाजी न रोक गये होते तो अवश्य उत्पात हुआ होता। युवको पर लालाजी का बड़ा असर था क्योकि वह 'लाल-बाल-पाल' त्रिभूति मे से एक थे, जो उस समय युवको के हृदय मे निवास करते थे।

लालाजी के निर्भीक विचारों से नौकरशाही कॉप उठी और उसने उन्हे सरदार अजीतसिंह के साथ निर्वासित करके माण्डले

भेज दिया। उस समय मैं क्राइस्ट चर्च स्कूल में अध्यापक था और शीघ्र ही कालेज से निकलने के कारण विद्यार्थियों में कुछ प्रभाव भी रखता था। अतः मैंने विरोध स्वरूप विद्यार्थियों की ओर से अपने नाम से एक तार सरकार को भेजा था। वह तार रोक लिया गया था और क्राइस्ट चर्च कालेज के वाइस प्रिंसपल तथा बोर्डिङ्ग हाउस के सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर क्रास्थवेरट ने मुझसे कहा था :—"When were you elected pope of the Christ Church college? Are you still a student?" (तुम्हें क्राइस्ट चर्च कालेज का पोप कब बनाया गया था? क्या तुम अब भी विद्यार्थी हो?) मैंने उसका उत्तर दिया था :—"Yes, I am still a student of religion and politics." (हाँ, मैं अब भी धर्म और राजनीति का विद्यार्थी हूँ।) उनके कहने का अभिप्राय यह था कि मैं अब तो विद्यार्थी रहा नहीं था अतः मुझे विद्यार्थियों की ओर से विरोध प्रकट करने का कोई अधिकार न था। किन्तु मैंने कहा कि मैं अब भी धर्म और राजनीति का विद्यार्थी हूँ, इसलिये मुझे अधिकार है। घटना छोटी है किन्तु वह अंगरेजी मनोवृत्ति को स्पष्ट प्रकट करती है जो हमारे विरोध को भी सामने नहीं आने देना चाहती—

न तड़पने की इजाजत है, न फरियाद की है।
घुट के मर जाऊँ यह मर्जी मेरे संयाद की है।

मांडले से छूट कर आने के बाद लालाजी का देश ने अभूतपूर्व स्वागत किया और कुछ दिन पश्चात् जब वह अमेरिका गये तो फिर सरकार ने उन्हें कई वर्ष तक भारत में लौटने नहीं दिया। किन्तु वहाँ भी लालाजी ने हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में काफी लिखा और अनेक व्याख्यान दिये। अमेरिका से निकलने वाले कई पत्रों में उनके लेख रहते थे और विशेष कर वहाँ के 'Young India' में। वहाँ के लिखे हुए उनके एक-दो लेख जो पुस्तकाकार

छपे थे जब्त भी कर लिये गये। माण्डले में लालाजी ने The message of Bhagwat Gita भी लिखा था। मुझे लालाजी का जो कोई भी लेख जहाँ मिला उसे अवश्य पढ़ा और संग्रह कर लिया। उन दिनों प्रत्येक मास 'Modern Review' और उर्दू 'ज़माना' में उनके लेख निकलते थे। 'ज़माना' मे 'इज्जत राय' के नाम से भी लालाजी के दो-एक लेख निकले थे, जो प्रायः आर्य-समाज की उन दिनों की मनोवृत्ति की आलोचना स्वरूप थे।

व्याख्यान देने मे तो लालाजी एक थे ही किन्तु उन्होंने उर्दू और अंगरेज़ी में लिखा भी काफ़ी है। उनकी 'Young India' नामक पुस्तक युवकों के लिए है और उनकी अन्तिम पुस्तक 'Unhappy India' मिस मेयो की पुस्तक 'Mother India' का कड़ा जवाब है। 'दुःखी भारत' के नाम से लालाजी की इस पुस्तक का अनुवाद भी हो गया है। देश के विरुद्ध जिस किसी देशी या विदेशी ने लिखा उसका मुँहतोड़ उत्तर लालाजी ने अवश्य दिया। लालाजी की वाणी और क़लम दोनों मे ज़ोर था और उनके विरोधी उनकी वाणी और क़लम की मार से तिलमिला उठते (Felt the lash of his tongue and of his pen) "वे मानसिक, आत्मिक और शारीरिक प्रत्येक प्रकार के अत्याचारों के विरोधी थे। अत्याचारी चाहे देशी हो और चाहे विदेशी, सब का विरोध करना लालाजी का कर्तव्य था। ढोंगियो, देश-द्रोहियों और पराजयवादियों के वह शत्रु थे।"*

एक अन्य अवसर पर कहे हुए एक अंगरेज़ के उपर्युक्त वाक्य लालाजी के सम्बन्ध मे कैसे सत्य घटित होते हैं।

---

*He was against tyrants—tyrants of mind, tyrants of soul, tyrants of the body, foreign tyrants, domestic tyrants, swindlers, humbugs, grafters traitors, invadors and defeatists,

देश का काम करने के लिए ऐसे युवकों को अवसर देना जिन्हें रोटी कपड़े की चिन्ता न रहे, लालाजी को यह बात सताया करती थी। इसलिए उन्होंने 'Servants of the peoples society' (जन-सेवक सभा) स्थापित की। अपना निजी एक बहुत बड़ा पुस्तकालय उक्त सोसाइटी को दान कर दिया। उसकी आर्थिक दशा बहुत कुछ मजबूत कर दी। लालाजी के बाद इस संस्था के वर्तमान सभापति बाबू पुरुषोत्तमदास जी टन्डन हैं। लालाजी ने अपने विचारों का प्रचार करने के लिये 'People' नाम का एक अंगरेजी साप्ताहिक और उर्दू दैनिक 'वन्देमातरम' निकाला था जिसमें प्रायः वह नित्य ही लिखते थे। मैंने एक बार टन्डनजी से कहा था कि लालाजी के सारे लेख और व्याख्यान और उनकी सारी पुस्तकें एक आकार-प्रकार में वैसे ही निकाली जायें जैसे कि युरोप के अनेक विद्वानो के ग्रन्थ प्रकाशित हुये हैं। किन्तु मेरी यह अभिलाषा आज तक पूरी नहीं हुई।

असेम्बली के चुनाव के समय पं० मोतीलाल जी नेहरू से लालाजी का कुछ मतभेद हो गया था और वह भी प० मदन-मोहन जी मालवीय के कारण। लालाजी मालवीय जी के साथ थे। प० मोतीलाल जी मालवीय जी का तो इस प्रान्त में विरोध कर नहीं सकते थे किन्तु उन्होंने लालाजी का विरोध करना उचित समझा। किन्तु एक पं० मोतीलालजी क्या कोई भी पंजाब में लालाजी को चुने जाने से रोकने वाला जन्मा ही न था। अतः लालाजी ने अपना प्रभाव दिखलाने के लिये दो जगह से नामीनेशन कराया और दोनो जगहो से चुने जाकर पं० मोती-लाल जी के दोनो उम्मेदवारों को हरा दिया।

जिस समय स्वराज्य-पार्टी का जन्म हुआ था उस समय लालाजी जेल में थे और मैंने अपने दैनिक 'विक्रम' में पार्टी का

समर्थन किया था। उस समय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने मुझ से पूछा था कि यदि लालाजी ने जेल से बाहर आकर स्वराज्य पार्टी का विरोध किया तब आप क्या करेंगे। मैंने उत्तर दिया था कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि लालाजी स्वराज्य पार्टी का समर्थन करेंगे और अगर उन्होंने विरोध किया तो मैं सोचूँगा कि मैं ठीक रास्ते पर हूँ या नहीं। परन्तु मेरी धारणा सत्य निकली और लालाजी ने स्वराज्य पार्टी का समर्थन किया।

सन् २१ की कलकत्ते की विशेष कांग्रेस के सभापति लालाजी थे। वहाँ असहयोग के मसले का देशबन्धु दास ने विरोध किया था। लालाजी ने बहैसियत सभापति के अपना कोई मत नही प्रकट किया। क्योंकि असहयोग के प्रश्न पर वे शिक्षा के सम्बन्ध मे मतभेद रखते थे। नागपुर कांग्रेस मे लालाजी और देशबन्धु दोनों ही पूर्ण रूप से असहयोग के प्रस्ताव के पक्ष मे न थे। जब इन लोगों की इच्छा के अनुकूल मूल प्रस्ताव में कुछ परिवर्तन मान लिया गया तब इन लोगों ने जिस दिन प्रस्ताव पेश होने वाला था उसके पहले वाली शाम को अपना मत उसके पक्ष मे प्रकट किया। बस अब तो प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ। नागपुर कांग्रेस तक अर्थात् १९२१ मे मि० जिन्ना भी कांग्रेस मे शामिल थे।

लालाजी ने लाखो ही रुपया पैदा किया। प्रारम्भिक काल मे उन्होने बहुत सा रुपया आर्यसमाज को दिया और बाद मे देश के अन्य उपयोगी कामो में लगाया, यहाँ तक कि अपना बँगला तक 'द्वारिका प्रसाद लाइब्रेरी' को (जो उन्ही की स्थापित की हुई है) और 'Servants of peoples society' को दे दिया। उन्होने भारतवर्ष के लिए सब कुछ बलिदान किया।

और भारतीय राष्ट्र निर्माण के एकमात्र लक्ष्य के लिये अपने को समर्पित कर दिया।*

लालाजी बड़े स्पष्टवक्ता थे। उन्होंने अपने विचारों को कभी नहीं छिपाया। अपने विचारों को कहने में वह किसी के भी विरोध की परवाह नहीं करते थे। उनमें चरित्र-बल भी खूब ही था। किसी सार्वजनिक नेता में चरित्र का होना वैसा ही आवश्यक है जैसे शरीर के लिये प्राणों का होना। यह असम्भव है कि हम किसी नेता को उसके सार्वजनिक कामों के लिये प्रतिष्ठा से देखें और उसके चरित्र के लिये उससे घृणा करें। अतः सार्वजनिक काम करने वालों में अच्छे चरित्र का होना परमावश्यक है और वह लालाजी में बहुत ऊँचे दर्जे का था।

एक महापुरुष के निम्नलिखित वाक्य उनके चरित्र का चित्रण अच्छी तरह करते हैं :—

'He was a man of strong emotions. He was generous, charitable and deeply religious. He was very sincere straightforward and a man of stony character.'

लालाजी का एक वाक्य जो सदा मेरी जबान पर रहता है और जिसे मैं उनका नाम आने के साथ बहुधा कह दिया करता हूँ वह है :—

'A natoin once awakened and awakened rightly cannot he put down.'

अर्थात 'जो राष्ट्र एक बार जाग्रत हो गया और ठीक प्रकार से जाग गया, उसे कोई दबा नहीं सकता।' लालाजी का यह

---

* He sacrificed his all for India and he dedicated himself to a single goal, the goal of India a nation·

वाक्य वैसा ही है जैसा तिलक महाराज का वाक्य कि 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे प्राप्त करूँगा।'

× × ×

लालाजी का जन्म लुधियाना जिले के जगराँव नामक गाँव के लाला राधाकृष्ण के घर में २८ जनवरी १८६५ को हुआ था। लालाजी ने 'अपने निर्वासन की कहानी' नामक पुस्तक में अपनी माता और पिता के सम्बन्ध में लिखा है-'दान, उदारता और अतिथि-सत्कार की शिक्षा मैंने अपनी माता से प्राप्त की है। मेरे पिता ने ही मेरे हृदय में धार्मिक और साहित्यिक भाव उत्पन्न किये थे। उन्होंने ही मुझे प्रथम देशभक्ति का पाठ पढ़ाया था।'

लालाजी की प्रारम्भिक शिक्षा भी उनके पिता जी ही की देख-रेख में हुई। लाला राधाकृष्ण जी स्वयं अपने पुत्र को फ़ारसी, उर्दू और गणित पढ़ाते थे। लुधियाना और अम्बाले के स्कूलों में पढ़ने के पश्चात् लालाजी ने १८८० में कलकत्ता और पंजाब दोनों विश्वविद्यालयों से इन्ट्रेन्स पास किया। लाहौर कालेज में एफ० ए० की परीक्षा की तैयारी के साथ मुख़्तारी भी पास कर ली। लाहौर में पढ़ते समय ही लालाजी की पं० गुरुदत्त विद्यार्थी और पं० हंसराज से मित्रता हो गई।

मुख्तारी पास करके लालाजी ने जगराँव में कुछ दिन मुख्तारी की, किन्तु बाद में रोहतक आकर १८८५ में वकालत पास की। १८८६ से १८९२ तक हिसार में वकालत करने के बाद लाहौर आ गये। विद्यार्थी जीवन से ही लालाजी सार्वजनिक कामों में भाग लेने लगे थे। १८८२ में ही वे आर्यसमाज के सदस्य बन गये थे और हिसार में म्युनिसिपल कमेटी के आनरेरी सेक्रेटरी थे। लाहौर पहुँचने पर आप दयानन्द एङ्गलो

वैदिक कालेज के कार्य में जुट गये और कई वर्ष तक उसके मंत्री, उपसभापति तथा अवैतनिक अध्यापक रहे। १९०५ में अमेरिका से लौटने के पश्चात् आपने "राष्ट्रीय शिक्षा" और "हमारी तालीमी किश्ती भँवर में" नामक दो पुस्तकें लिखीं। इसी वर्ष से आपकी गणना राजनीतिक आकाश के जाज्वल्यमान तारा-गणों में होने लगी।

लालाजी का कार्य केवल धार्मिक और राजनीतिक क्षेत्रों ही में नहीं सीमित था। उन्होंने अनाथों की रक्षा, अकाल और भूकम्प पीड़ितों की सहायतार्थ पर्याप्त कार्य किया है। सामाजिक क्षेत्र भी उनकी सेवाओं से वंचित नहीं रहा। अछूतोद्धार तथा शिक्षा-प्रचार में लालाजी ने तन, मन और धन से स्वयं कार्य किया और अपने अनेक अनुयायियों को भी उक्त कार्यों में जुटाया। तात्पर्य यह निकलता है कि लालाजी की सेवाएँ चतुर्मुखी थीं और उन्होंने देश की समस्त आवश्यकताओं पर विचार और कार्य किया था।

यद्यपि लालाजी प्रायः उर्दू और अंगरेजी में लेख लिखते थे किन्तु आप हिन्दी के भी प्रेमी थे। जिस समय सन् १९०० में हिन्दी-उर्दू का झगड़ा चला था उस समय लालाजी ने हिन्दी ही का पक्ष समर्थन किया था।

सर सैय्यद अहमद खाँ की औंधी चाल का विरोध करने ही से लालाजी सन् १८८८ में कांग्रेस में सम्मिलित हुए। इस समय उनकी अवस्था केवल २३ वर्ष की थी किन्तु अपनी वक्तृता से उन्होंने बड़े-बड़े दिग्गजों पर अपना सिक्का जमा दिया। यद्यपि चौथी कांग्रेस के समय से ही लालाजी का सम्बन्ध कांग्रेस से हो गया था किन्तु आपको कांग्रेस में विशेष स्थान १९०५ से मिला, जब कि वे कांग्रेस के डेपूटेशन से विलायत से

लौट आकर बनारस कांग्रेस में स्वदेशी और स्वराज्य के सम्बन्ध मे बोले थे।

यहीं से इन पंक्तियों के लेखक का परिचय लालाजी से होता है और वह उन्हें अपना नेता मान लेता है।

साइमन कमीशन के विरोध वाले जुलूस के नेता की हैसियत से जब लाहौर मे उनके सोने पर एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के डन्डे की चोट लगी थी तब उन्होंने कहा था कि 'मेरे ऊपर पड़ने वाली ये चोटें ब्रिटिश साम्राज्य के दफ़न करने वाले तावूत की एक-एक कीलें है।' इन चोटों के शारीरिक कष्ट की तो लालाजी को कोई परवाह न थी, परन्तु इससे उनके हृदय पर वह गहरी चोट लगी कि चन्द दिनों ही के पश्चात् उनका शरीरान्त हो गया। ग़ज़ब है कि पराधीन जाति का एक बड़े से बड़ा नेता एक साधारण पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट द्वारा इस प्रकार अपमानित किया जा सकता है।

लालाजी के अमर-वाक्य

१—केवल निन्दा करना ही राजनीति नहीं है। राजनीति का अत्यन्त उपयोगी अंग यह है कि अपनी जाति की सामाजिक शक्ति दृढ़ की जाय।

२—स्वाधीनता के मंत्र का जप करने मे अपने तुच्छ प्राणों का मोह त्यागना होता है।

३—मेरा विश्वास है कि जो देश स्वतन्त्रता के लिए दुःख सहने के लिये तैयार नहीं वह स्वतन्त्रता के पाने के योग्य नहीं और स्वतन्त्रता पावेगा भी नहीं।

४—देश-सेवा से बढ़ कर हमारा कोई धर्म नहीं है।

५—जिस शख्स को जातीय इज्जत और आत्मसम्मान का ख्याल नहीं है वह इन्सान नहीं हैवान है।

६—हम मनुष्यों को केवल मनुष्य होने के कारण प्यार करें, न कि उनकी सम्पति, विद्या या पद के कारण।

७—संसार में मातृ-शक्ति सबसे पवित्र और सबसे महान शक्ति है। यही शक्ति सृष्टि को रचती है और यही उसकी रक्षा करती है। माताओं में सबसे बड़ी और सबसे अधिक पूजा के योग्य मातृभूमि है जो माताओं की माता है। इसलिये हमारा धर्म है कि हम इस मातृभूमि की सेवा से अपने जन्म को सफल करें।

८—प्रत्येक जाति की सभ्यता की प्रारम्भिक पहचान इस बात से की जाती है कि उस जाति की माता और बच्चों की राष्ट्रीय रक्षा और शिक्षा कैसी है।

९—अच्छी बातें जहाँ से मिलें वहाँ से ग्रहण करना और अपनी बुराइयों को बिना किसी पक्षपात के छोड़ देना चाहिए।

१०—हिन्दुस्तानी जातियों के वर्तमान संघर्ष में पहले मैं हिन्दू और पीछे हिन्दुस्तानी रहूँगा, किन्तु हिन्दुस्तान के बाहर और हिन्दुस्तान के भीतर ही गैर-हिन्दुस्तानी के मुकाबिले में पहले मैं हिन्दुस्तानी हूँ और रहूँगा, पीछे हिन्दू।

११—मानसिक दासता से अधिक हानिकारक और किसी भी प्रकार की दासता नहीं होती और न मनुष्य जाति को सदैव के लिये बन्धन में जकड़ने से बढ़कर और कोई घोरतर पाप ही होता है।

लालाजी कुछ ग्रन्थ

१—Life of pt. Gurudutt.
२—ग्वीसेप मेज़िनी (उर्दू)
३—गेरीबाल्डी (,,)
४—छत्रपति शिवाजी (,,)
५—महर्षि स्वामी दयानन्द और उनकी शिक्षा।
६—महात्मा श्रीकृष्ण
७—The story of my Deportation.
८—The Aryasamaj—an account of its origin, doctrines and activities with a biographical sketch of the founder.
९—The United states of America (A Hindus impressions and a study)
१०—Young India
११—An open letter to Lloyd George
१२—England's Debt to India.
१३—The political future of India.
१४—National Education
१५—भारतवर्ष का इतिहास।
१६—The message of the Bhagwat Gita
१७—खयालात लाजपत (उर्दू)
१८—दुःखी भारत।

श्री अरविन्द घोष

१९०७ की सूरत की कांग्रेस के अवसर पर पहले-पहल श्री अरविन्द के दर्शन हुए। तिलक महाराज ने जो गरमों की कान्फरेन्स की थी उसके घोष बाबू सभापति थे। आपने बड़ी योग्यता से सभा का संचालन किया था। अंगरेजी आपकी बड़ी सुन्दर थी। कुछ लोगों का कहना है कि श्री अरविन्द घोष की अंगरेजी निर्दोष होती थी। कम से कम इतना तो मैं भी कह सकता हूँ कि उनकी भाषा पढ़ने में मजा आता था। उनके राजनैतिक विचारों में भी आध्यात्मिकता का काफी पुट रहता था। जब तक उनका अंगरेजी दैनिक 'वन्देमातरम' निकला उसे मैं प्रायः नित्य ही राय देवीप्रसाद जी पूर्ण के वाचनालय में जाकर पढ़ आया करता था। उनके साप्ताहिक 'Karm Yogin' का मैं ग्राहक बना और फिर एजेन्ट बन कर उसका प्रचार करने लगा। उसकी फाइल अब तक मेरे पास है। उसमे बड़े महत्व के लेख निकलते थे, जिनमे हिन्दू संस्कृति और भारतीय सभ्यता के बडे गम्भीर और मार्मिक लेख रहते थे। श्री अरविन्द के लेखो मे धर्म और राजनीति का ऐसा गूढ़ और उत्तम समावेश है कि उनकी एक-एक पंक्ति मनन करने योग्य है।

आपकी अंगरेजी की कविताएँ भी बड़ी सुन्दर होती थीं। आपने कई पुस्तकें अंगरेजी कविता की लिखी हैं। घोष बाबू योग का भी काफी अभ्यास करते रहे हैं और उसमे उन्होंने काफी सफलता प्राप्त की है, जिसकी ख्याति उनके 'अलीपुर बम केस' के जमाने में ख़ूब हुई थी। अलीपुर केस से छूटने के पश्चात्

आप पॉडीचेरी चले गये और अब तक वहीं हैं और योग का अभ्यास करते हैं। उनके शिष्यों में अनेक यूरोपियन महिलाएँ और पुरुष हैं। सुना है कि वह शराब भी बहुत पीते हैं और उसी के नशे में योग साधन करते हैं। एक बार लाला लाजपत राय जी उनसे मिलने गये थे। सुना है कि घोष बाबू विलायत मे I. C S. की परीक्षा पास हो गये थे परन्तु घोड़े पर चढ़ना नही जानते थे अतः फेल कर दिये गये। वहाँ महाराजा बरौदा से उनकी भेंट हुई। वह उन्हे अपनी रियासत के कालेज का मुख्याध्यापक बना कर ले आये। कालेज में उन्हें ७५०) रु० मासिक मिलता था जिसमे से आप अपने लिये केवल १५) रु० खर्च करते थे और १५) रु० अपनी धर्मपत्नी को भेजते थे। बाक़ी सब लोकोपकारी कामो मे खर्च कर देते थे। एक बार उनको स्त्री ने एक साड़ी के लिये कुछ और रुपया मँगाया। रुपया तो उन्होंने भेज दिया, लेकिन बड़ा लम्बा पत्र लिखा, जो पुस्तकाकार अलग से छप गया था, इस पत्र मे उन्होने लिखा था कि यदि ईश्वर हमें एक रुपया देता है तो हम अपनी मजदूरी भर दो आने उसमे से ले लें और शेष उसी को लौटा दें वरना हम चोरी करते हैं। अपनी योग्यता से प्राप्त धन के सम्बन्ध मे जिस महान पुरुष के ऐसे विचार हो उसके हृदय की विशालता के क्या कहने हैं। धन्य है!

बरौदा कालेज के प्रिन्सिपल पद को छोड़कर आप कलकत्ते चले आये और राष्ट्रीय कार्य में जुट गये। उन दिनों इन्होंने अनेकानेक व्याख्यान दिये और 'वन्देमातरम' का सम्पादन शुरू कर दिया। इनका 'उत्तर पाड़ा' का एक व्याख्यान बड़ा मशहूर था और वह अलग से पुस्तकाकार भी छप गया। इनके 'वन्दे-मातरम' के कुछ मुख्य लेख भी 'Selections from Bande mataram' के नाम से अलग छप गये हैं। साप्ताहिक कर्मयोगिन

में योगिराज अरविन्द ने उपनिषदों का अंगरेजी अनुवाद भी निकालना शुरू किया था, जो धारावाहिक रूप से बराबर निकलता रहा। श्री अरविन्द घोष अंगरेजी और संस्कृत के महान पंडित हैं और बंगला तो उनकी मातृभाषा ही है। वे योरोप की कुछ अन्य भाषायें भी जानते हैं। उनका ज्ञान अपार है, योग्यता बड़ी है। परन्तु दुःख है कि वह देश के किसी काम नहीं आ रही है। यह है पराधीन देश का शाप।

सुना था कि जिस समय 'अलीपुर बम केस' चला था और श्री अरविन्द जेल में थे उस समय उनके भोजन के साथ एक तमंचा भी पहुँच गया था। उसी तमंचे से कन्हैयालाल दत्त ने नरेन्द्रनाथ गोस्वामी नामक एप्रूवर को मार दिया था। घोष बाबू को अदालत ने निर्दोष पाया। उनके मुकदमें की पैरवी श्री चित्तरंजन दास ने की थी और उसी समय से वह जनता के सामने आये थे। श्री अरविन्द के भाई श्री वीरेन्द्र घोष उस समय की बंगाल की आतंकवादी पार्टी के मुखिया थे। और मेरा खयाल है कि उक्त आन्दोलन की जान श्री अरविन्द घोष थे। उनके उस समय के लेखों से आतंकवाद का दर्शनशास्त्र प्रकट होता है।

अरविन्द-आदेश

१—जो अपने देश से अधिक अपने आपको, अपनी स्त्री या बच्चे को अथवा अपनी सम्पत्ति को प्रेम करता है, वह तुच्छ और अपूर्ण देशभक्त है, और उसके द्वारा यह महान कार्य सम्पादित नहीं हो सकता।

२—हमारी विकृत, पेचीली, और अपूर्ण मानवता में यह एक दुर्लभ देन है कि हमारे विचार स्पष्ट हों, हम अपने तथा दूसरों के प्रति अपने व्यवहार में सच्चे और साफ हों,

तथा अपने परिश्रम की परिस्थितियो और सामग्री के प्रति पूर्णरूपेण न्यायपरायण हो।

३—प्रकृति का द्वार स्पष्ट, न्याययुक्त और परिचय-योग्य ढंग से खटखटाने पर प्रत्युत्तर मे अचूक और परिश्रमानुसार परिणाम प्राप्त होता है।

४—हमारे धर्मशास्त्रो मे मातृभूमि को परम पूजनीय बतलाया है, और जो हमारे धर्म के रहस्य को समझते हैं वे अपने हृदय मे यह विश्वास करते हैं कि अपनी मातृभूमि से प्रेम करना ही धर्म का सबसे छोटा और सबसे बड़ा अंग है।

५—अब इस ऋषियो के देश मे एक स्वतन्त्र और संयुक्त-भारत का विचार उत्पन्न हो गया है और पूर्णता को प्राप्त होता जाता है। इसको आगे बढ़ाने के लिये हमारी महान प्राचीन सभ्यता की आध्यात्मिक शक्ति भी एकत्रित हो रही है। क्या इङ्गलैंड दमनकारी क़ानूनो द्वारा इस विचार को नष्ट कर सकता है?

६—विदेशी-राज्य कितना भी दयालु और हितैषी हो वह हमें बिना दबाये न छोड़ेगा। उसका उद्देश्य कितना भी अच्छा हो किन्तु उससे हमारा अहित छोड़ हित कदापि न होगा।

———　———
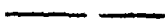
पं० मदनमोहन मालवीय

जिस आदमी का बचपन से लेकर लम्बे बुढ़ापे तक सारा जीवन देश-हित ही में बीता हो उस महापुरुष के सामने ऐसा कौन नराधम है जो अपना सिर श्रद्धा से न झुकाये। मालवीय जी महाराज जब विद्यार्थी थे तब ही से उन्होंने स्वदेशी-व्रत धारण किया था, जिसे वह आज तक निबाह रहे हैं। उनका क्षण-क्षण देश की चिन्ता ही में व्यतीत होता है। महापुरुष के सब लक्षण इनमें मौजूद हैं। उन्होंने अनेक ऐसे कार्य किये हैं जो चिरकाल तक उनके देशवासियों के हृदय में उनकी स्मृति अमर बनाये रखेंगे। वह पक्के आस्तिक और सनातनी आस्तिक हैं। वह कांग्रेस के हामी, शिक्षा के हिमायती और हिन्दी के पक्षपाती हैं। इन सब के लिये उन्होंने बहुत कुछ किया है। व्याख्यान में तो वह प्रथम श्रेणी के हैं। उनके भक्तों की संख्या देश में अपार है। कुछ वर्तमान कांग्रेस के लौंडो-चौंडों को छोड़ कर सब ही लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। सरकार में भी उनका मान है। चन्दा जमा करने में वह अपना सानी नहीं रखते।

उनकी हिन्दी हितैषिता के अनेक प्रमाण हैं। सर एन्टनी मेक्डोनल्ड के ज़माने में उन्होंने अदालतों में नागरी अक्षरों का सफल आन्दोलन चलाया था। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में उन्होंने कालाकाँकर से निकलने वाले "हिन्दुस्तान" पत्र का सम्पादन किया था, जिसमें कदाचित् पं० प्रतापनारायण मिश्र भी बाद में पहुँच गये थे। उन्होंने मासिक 'मर्यादा' और साप्ताहिक 'अभ्युदय' को जन्म दिया, जिन्होंने राजनैतिक विचारों को

हिन्दी में प्रचार करने मे पर्याप्त काम किया। अभ्युदय प्रेस से हिन्दी की अनेक उत्तम पुस्तके प्रकाशित हुई हैं। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी भी अभ्युदय मे कुछ दिनो काम कर चुके हैं। पं० वेंकटेश नारायण तिवारी ने मर्यादा का कुछ समय तक सम्पादन किया है। मैंनें भी अभ्युदय मे कई बार लिखा है। अभ्युदय से सम्बन्धित एक घटना मुझे स्मरण है। जिस समय मालवीय जी महाराज एक कम्पनी बना कर 'अभ्युदय' को दैनिक रूप मे निकालना चाहते थे, मैं अपने शिक्षक पं० देवीप्रसाद शुक्ल से एक पत्र लेकर मालवीय जी के पास गया था। मेरी इच्छा उनकी ज़ेर-निगरानी काम करने की थी। पत्र मे शुक्ल जी ने मेरी हर तरह से सिफ़ारिश की थी किन्तु साथ मे यह भी लिख दिया था कि मेरे विचार गरम हैं। जिस समय मैं पत्र लेकर मालवीय जी के पास पहुँचा वह मालिश करवा रहे थे। मालिश का मालवीय जी को बहुत शौक़ है। मेरा पत्र पढ़कर मालवीय जी कहने लगे, 'भैय्या मैं तो गरमी की क़द्र करता हूँ, मैं गरमी से चिढ़ता नहीं। जिस एञ्जिन मे गरमी नहीं वह चलेगा कैसे ? मैं तो सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि गरमी का प्रयोग ठीक ढंग से हो और उससे भाफ बने जिसका सदुपयोग हो।" मुझे उन्होने अपने घर ही मे ठहराया और वह खाना खिलाया जो एक सात्विक सनातनी के घर का हो सकता है। किन्तु मेरे दुर्भाग्य से उस समय मालवीय जी की वह स्कीम आगे न चली और उनकी सेवा मे रह कर कुछ सीख न सका। उनकी हिन्दी हितैषिता के प्रमाण स्वरूप ही उन्हें प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति काशी मे बनाया गया। वह सदा हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान के हिमायती रहे हैं।

पुराने ज़माने मे जो बड़ी कौंसिल (Imperial council) थी उसके भी सदस्य मालवीय जी रहे हैं और नई केन्द्रीय

असेम्बली में तो आप राष्ट्रीय दल के नेता ही रहे हैं। मालवीय जी के व्याख्यान बड़े मार्मिक और काफी लम्बे होते हैं। अंगरेजी और हिन्दी दोनों ही में मालवीय जी घंटों ही धारावाहिक रूप से बोल सकते हैं और बोलते रहे हैं। सरकार और देश की जनता पर उनके व्याख्यानों का काफी असर पड़ता रहा है। मैंने उनके अनेक व्याख्यान सुने हैं और उनके अंगरेजी व्याख्यानों का एक संग्रह, जो अधिकतर कांग्रेस मंच और कौंसिल के ही व्याख्यान थे, मद्रास की गनेश कम्पनी से निकलवाया था। उनका छोटा-सा जीवन चरित्र और कुछ व्याख्यान हिन्दी में भी 'कलयुगी पुस्तकालय' के अध्यक्ष पं० कृपानारायण शुक्ल के द्वारा भी प्रकाशित करवाये थे। उनके अंगरेजी व्याख्यानों का संग्रह एक बड़ी और प्रमाणिक पुस्तक है और प्रत्येक राष्ट्र-वादी के मनन करने योग्य है।

इलाहाबाद का मेक्डानल्ड हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस मालवीय जी ही के प्रयत्न का फल है। उन दिनों में विद्यार्थियों को रहने के स्थान की बड़ी कमी थी, इसको मालवीय जी ने पूरा किया। इस बोर्डिङ्ग हाउस की आबोहवा राष्ट्रीय थी। मैं कई बार वहाँ ठहर आया हूँ। श्री सुन्दरलाल से वहाँ मेरी भेंट १९०७ में हुई थी। यहाँ सदा किसी न किसी राष्ट्रीय मसले पर चर्चा छिड़ी ही रहती थी। मालवीय जी का दूसरा महान काम है काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय की स्थापना। यह विश्वविद्यालय देश में अपने ढंग का निराला है। इसकी प्रशंसा विदेशों में भी है। इसके स्थापित करने में मालवीय जी ने यह भी प्रमाणित कर दिया कि वह चन्दा जमा करने में अद्वितीय हैं और ऐसे राजे-महाराजों से रुपया वसूल कर सकते हैं जो राष्ट्रीय कांग्रेस से कोसों दूर भागते हैं। एक बार मैं मालवीय जी महाराज से हिन्दू विश्वविद्यालय में भी मिलने गया था। वहाँ उन्हें अधिक पास से देखकर और

भी श्रद्धा बढ़ी। बनारस में जाने वाले प्रत्येक यात्री का कर्तव्य है कि वह इस विशाल विद्यालय को अवश्य देखे।

मालवीय जी महाराज कांग्रेस के दो बार सभापति हुए और कांग्रेस का शायद ही कोई ऐसा अधिवेशन हुआ हो जिसमे वह सम्मिलित न हुए हों और उसके कार्य संचालन में उन्होने अपनी नेक सलाह न दी हो। कई बार ऐसे अवसर आये कि उनका कांग्रेस के मुख्य प्रस्ताव से मौलिक मतभेद रहा और लोग यह समझने लगे कि अन्य नेताओं की तरह मालवीय जी भी कांग्रेस से अलग हो जायँगे। किन्तु घोर से घोर विरोध होते हुए भी मालवीय जी ने कांग्रेस को नहीं छोड़ा और सदा अपनी बात कांग्रेस के सामने रखते रहे। उन्हे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं रही कि उनकी बात मानी ही जाय। वह तो जो उचित समझते थे कह देते थे। मानना न मानना बहुमत का काम था। सूरत कांग्रेस के समय जब एक प्रकार की Civil War (गृह-कलह) हुई थी तब मैंने मालवीय जी को बड़ा दुःखी देखा था। कई बातो में मतभेद होते हुए भी महात्मा गांधी उन्हें अपना बड़ा भाई समझते हैं और वैसा ही उनका आदर करते हैं।

अवसर आने पर मालवीय जी ने जेल जाने मे भी आगा-पीछा नहीं किया। देश की आवश्यकता को समझ कर उन्होने हजारों ही हरिजनों को दीक्षा दी। सदा उनका प्रत्येक कार्य देश-हित की दृष्टि से होता रहा है। वह स्वयं ही देश-हित के कार्यों मे भाग नहीं लेते रहे हैं किन्तु उनके घर वाले भी देश के किसी कुटुम्ब से देश-सेवा के कार्यों मे पीछे नहीं रहे हैं। उन्होंने सैकड़ों नहीं हजारों नवयुवको को देशभक्त बनाया है। मेरे पुत्र तिलक-अरोड़ा ने मालवीय जी का 'आटोग्राफ' लेते समय उनसे एक वाक्य लिखने की प्रार्थना की तो उन्होने लिख दिया, "सत्यंवद,

धर्मचर, देशभक्तो भव"। किसी जमाने में बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन भी उनके भक्तों में थे। जो कोई तनिक भी मालवीय जी के संसर्ग में आया उसे थोड़ी बहुत देश-हित के कामों की धुन लग गई। वह चन्दन के वृक्ष के समान अपनी सुवास दूसरों को प्रदान करते रहते हैं। उनका जीवन आदर्श जीवन है।

मालवीय जी के पूर्वजों में से एक सज्जन लगभग ५०० वर्ष हुए तब प्रयाग में आकर बसे थे। पं० मदनमोहन मालवीय अपने पिता पं० ब्रजनाथ के तीसरे पुत्र हैं और इनका जन्म प्रयाग में २५ दिसम्बर १८६१ को हुआ था। संस्कृत विद्वानों का घराना होने के कारण बालक मदनमोहन की शिक्षा का आरम्भ भी एक संस्कृत पाठशाला ही से हुआ। बाद में अंगरेजी पढ़ना शुरू करके १८७९ में एन्ट्रेन्स और १८८४ में बी० ए० पास किया और उसी साल गवर्नमेन्ट हाईस्कूल में ५०) रुपया मासिक पर असिस्टेन्ट मास्टर हो गये। सात वर्ष पश्चात् आपने १८९१ में वकालत पास की और हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे। इसी सात वर्ष के जमाने में आपने कालाकाँकर के स्वर्गीय राजा रामपाल सिंह के अनुरोध से उनके हिन्दी पत्र "हिन्दुस्तान" का सम्पादन २॥ साल तक किया। "हिन्दुस्तान" का सम्पादन छोड़ने पर पं० अयोध्यानाथ के अंगरेजी पत्र "इण्डियन ओपीनियन" का सम्पादन करने लगे।

राष्ट्र-निर्माण में पत्रों की उपयोगिता का महत्त्व समझ कर मालवीय जी ने हिन्दी में 'अभ्युदय' और 'मर्यादा' को जन्म दिया और अंगरेजी में 'लीडर' निकलवाया।

सार्वजनिक कामों में अधिक रुचि रखने के कारण ही मालवीय जी को वकालत में चोटी पर पहुँचने में दो-तीन सीढ़ियाँ शेष रह गईं और ज्योंही उनके बड़े पुत्र श्री रमाकान्त जी वका-

लत करने लगे त्योंही मालवीयजी वकालत छोड़कर सारा समय देश-हित साधन में खर्च करने लगे।

यह तो लिखा ही जा चुका है कि मालवीयजी अपने विद्यार्थी काल ही से सार्वजनिक कामों में भाग लेने लगे थे। इलाहाबाद लिट्रेरी इन्स्टीट्यूट आपका प्रारम्भिक क्रिया-स्थल था। पब्लिक का काम करना आप पहिले-पहल यहीं सीखे। स्थानीय हिन्दू-समाज के आप बड़े क्रियाशील मेम्बर थे। सन् १८८६ की कलकत्ते में होने वाली द्वितीय कांग्रेस में आप पहले-पहल सम्मिलित हुए थे। आपकी पहली ही स्पीच का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। थोड़े ही दिनों में मालवीय जी कांग्रेस के चुने हुये आदमियों में समझे जाने लगे। मालवीयजी कोरे व्याख्यानदाता ही न थे बल्कि बड़े क्रियाशील भी थे। उन्हीं के प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रयाग में १८८८ की मशहूर कांग्रेस हुई थी और १८९२ में भी उन्हीं के दम से फिर प्रयाग में कांग्रेस का अधिवेशन हो गया। १९०८ में आपने लखनऊ में प्रान्तीय कान्फरेन्स के सभापति का आसन ग्रहण किया और दो बार अखिल भारतीय कांग्रेस के सभापति हुए।

मालवीयजी कई वर्ष तक इलाहाबाद म्युनिसिपल बोर्ड के मेम्बर और दो बार उसके चेयरमैन भी रह चुके हैं। आप प्रयाग विश्वविद्यालय के फेलो और पुरानी (मार्ले-मिन्टो-रिफार्म के पूर्व) इम्पीरियल कौंसिल के मेम्बर भी वर्षों तक रहे हैं। मालवीयजी जहाँ भी रहे वहाँ उन्होंने देश की प्रशंसनीय सेवा की। यह मालवीयजी ही के प्रयत्नों का फल है कि कचहरियों में देव-नागरी लिपि का रास्ता खुल गया है। उसका चलना न चलना हिन्दी-प्रेमियों के साहस और उत्साह पर निर्भर है।

मालवीय जी के मंत्र

१—हरएक को अपने धर्म का पालन अपने ही दृष्टिकोण से करने की स्वतन्त्रता है।

२—जीवन एक संगीत है। उसके सभी तार दुरुस्त रखो, नहीं तो उसका साज बिगड़ जायगा।

३—हिन्दुओं की किसी वास्तविक उन्नति से पहले यह आवश्यक हो जाता है कि हिन्दी साहित्य का पुनरुत्थान हो।

४—हमारा प्राचीन वर्ण विभाग वर्तमान समय के उन नियमों के अनुसार ही था जिन्हें आज सभ्य संसार श्रम-विभाजन तथा "रुचि और बुद्धि की परम्परागत प्राप्ति" के नाम से पुकारता है।

५—जो मनुष्य अपनी वर्तमान अवस्था से ऊँची अवस्था में जाना चाहता है उसे अहिंसा की प्रतिज्ञा लेनी पड़ती है। सत्य मनुष्य का मुख्य धर्म तथा कर्तव्य है। 'सत्यान्नास्ति परो धर्मः।'

६—मंदिर अथवा मसजिद नष्ट-भ्रष्ट करने से धर्म की श्रेष्ठता नहीं बढ़ती। ऐसे दुष्कर्मों से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता।

७—प्राचीनकाल में ऋषियों ने अनार्यों को आर्य और सभ्य बना लिया था। अतः जो लोग स्वेच्छा से हिन्दू-धर्म स्वीकार करना चाहें, उन्हें ऐसा करने का अधिकार है।

८—यदि हम अपने देशवासियों के प्रति सत्य सेवा का प्रण करते हैं तो हमें दूसरों के धर्म, जीवन, स्वतन्त्रता तथा

प्रतिष्ठा का वैसा ही ध्यान रखना चाहिये जैसा हम अपने लिए दूसरों से चाहते हैं।

९—आचार की उन्नति करना आर्थिक उन्नति से कहीं अधिक महत्त्व रखता है।

१०—सुयोग्य एवं शिक्षित धर्म-गुरुओं के अभाव के कारण अधिकांश हिन्दू-जनता, राजा, धनीमानी नागरिक, यहाँ तक कि ब्राह्मण भी धर्म की नियमानुकूल शिक्षा तथा उस पर आचरण करना नहीं सीख पाते।

११—आत्म-विश्वास तथा दृढ़ निश्चय के सम्मुख सब कठिनाइयाँ सरल बन जाती हैं।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी से प्रथम परिचय पं० उदयनारायण वाजपेयी के द्वारा हुआ। पं० उदयनारायण द्विवेदीजी के सहकारी थे और सरस्वती की लेख-सामग्री लेकर दूसरे-तीसरे दिन द्विवेदीजी के पास जाया करते थे। द्विवेदीजी जूही से ही सरस्वती का सम्पादन करते थे। एक दिन मैं भी वाजपेयी जी के साथ द्विवेदीजी की सेवा मे उपस्थित हुआ। उनसे प्रार्थना की कि मैं भी हिन्दी लिखना सीखना चाहता हूँ क्योंकि मैंने एफ० ए० तक फारसी पढ़ी है और बी० ए० पास करने के बाद भी मुझे हिन्दी मे सिवा अक्षर-ज्ञान के और कुछ नहीं लिखना आता। द्विवेदीजी ने कहा, 'हिन्दी लिखने में कोई कठिनाई नहीं है,' वह तो हम सब की मातृभाषा है। जो कुछ घर मे और मित्रों से बोलते हो उसे देवनागरी अक्षरों में लिख लिया करो। मैंने यह मन्त्र लेकर और द्विवेदीजी से प्रोत्साहन प्राप्त करके हिन्दी लिखना शुरू कर दिया। कितना सरल नुस्खा था, जो आज भी वैसा ही सत्य है जैसा कि उस समय था!

इस घटना के बाद तो पचासों बार जूही के गुरुद्वारे में जाने के अवसर मिले और द्विवेदीजी के बारे में यह धारणा हुई कि द्विवेदीजी केवल हिन्दी के प्रकाण्ड पंडित ही नहीं हैं किन्तु अपनी सारी चीजों को बड़े व्यवस्थित ढंग से रखते हैं। उनका कमरा चारों ओर किताबों से भरा रहता था। हम मे से जब कोई आदमी किसी अलमारी से कोई पुस्तक निकालता तो उसे आज्ञा होती कि देखने के पश्चात् उसे उसी स्थान पर रख दे जहाँ से उसे निकाला था। उनकी चीजें बड़े क़रीने से रखी रहती

थी। थोड़े से स्थान मे इतनी अनेक चीजें ऐसे अच्छे ढंग से रखी रहती थी कि उनमे तनिक भी भद्दापन नहीं मालूम देता था। वह मितव्ययी भी बड़े थे। जब कोई पत्र आता तो पत्र पढ़ने के बाद उसके लिफाफे को चाकू से काटते और काटकर रख लेते तथा आवश्यकतानुसार उसकी पीठ पर लिखते थे। अगर पत्र मे कोई आलपीन लगी होती तो उसे निकाल कर 'कुशन' मे लगा लेते। उनके कमरे मे सफाई इतनी अधिक रहती कि इधर-उधर पड़ा हुआ एक तिनका भी नही दिखाई देता। उनमे शिष्टाचार भी पर्याप्त था। ज्योंही आप पहुँचे कि उन्होने अपनी डिबिया मे से दो पान निकाल कर आपको भेंट किये। जलपान को पूछा और बाद में बातचीत आरम्भ की। बातचीत करने के पश्चात् जब उन्होने देखा कि आगे आपको और कोई विशेष बात नहीं करनी है, अपने काम मे जुट गये। थोड़ी देर पश्चात् उन्होने आपको दो पान और भेंट किये। यह इशारा होता था कि बस आप तशरीफ ले जाइये। इससे यह प्रकट होता है कि वह समय का कैसा उपयोग करते थे और व्यर्थ की गपशप मे समय नष्ट नही करते थे। इसका यह मतलब नहीं कि यदि आप उनसे किसी ख़ास विषय पर अधिक बातचीत करना चाहे तो वह बात नहीं करेंगे। नहीं, यह बात नहीं थी। किसी महत्वपूर्ण विषय पर वह काफी देर तक बात किया करते थे लेकिन ठलुहा-पन्थी नहीं करते थे। समय के सदुपयोग और अपने अथक परिश्रम ही के कारण वह रेलवे के एक क्लर्क से हिन्दी के आचार्य बन गये। उनके शिष्टाचार का एक और नमूना यह है कि विदा होते समय वह अपने अतिथि को फाटक तक सदैव पहुँचाने आते थे, अतिथि चाहे छोटा हो या बड़ा।

द्विवेदीजी की लेखन-शैली अपनी ख़ास थी। सरस्वती के लिये उनके पास जिस किसी के भी लेख आते थे उन्हे वे अपनी

शैली में ढाल लेते थे। अतः लेखक चाहे छोटा हो या बड़ा, सब की भाषा परिमार्जित हो जाती थी। इसलिये आप द्विवेदीजी के समय की सरस्वती का कोई भी लेख उठा कर पढ़िये, आपको उसमें द्विवेदी जी की भाषा की छाप मिल जायेगी। वह लेखों को ठीक करने में काफी परिश्रम करते थे और शब्दों के हिज्जे करने में भी उनका अपना एक खास ढंग था। सरस्वती के लिये अंगरेजी में लिखे हुये आने वाले लेखों को द्विवेदीजी उनके मूल लेखकों को हिन्दी की ओर प्रोत्साहित करने के लिये उन्हीं के नाम से प्रकाशित करते थे और उनका अनुवाद अपने चेलों से करा लिया करते थे और उनसे कह देते थे कि तुम्हारा नाम नहीं प्रकाशित होगा। इन पंक्तियों के लेखक ने भी ऐसे कई लेखों का अनुवाद किया है।

जिन दिनों मैं हिन्दी के साप्ताहिक और मासिकपत्रों में ख़ूब ज़ोर-शोर से लिखने लगा, तो द्विवेदीजी ने एक दिन मुझसे कहा कि "अब तो आप ख़ूब लिखने लगे, सरस्वती पर भी कभी-कभी कृपा किया करो।" बस फिर क्या था, मैं तो यही चाहता था। मेरे मन की साध थी कि मेरे लेख सरस्वती में निकलने लगें। मैंने द्विवेदीजी से कहा कि 'मेरे ऐसे भाग्य कहाँ; जो आप मेरे लेख सरस्वती में निकालें। मैंने तो कई महीने हुए 'वनस्पति शास्त्र' पर एक लेख सरस्वती के लिये भेजा था। वह नहीं छपा। मैंने सोचा कि मुझे अभी और लिखने का अभ्यास करना चाहिये।' उन दिनों मैंने वनस्पति-शास्त्र पर एक पुस्तक पढ़ी थी और उसी के आधार पर वह लेख लिख डाला था। द्विवेदी जी ने मुझे आश्वासन देते हुये कहा कि वह लेख तो निकलेहीगा किन्तु और कुछ लिखो। मैंने शीघ्र ही एक छोटा-सा लेख 'सेवा' पर लिखा और यह मेरा प्रथम लेख सरस्वती में निकला। मैं कृत्य-कृत्य हो गया। सरस्वती में प्रकाशित और

अपने मूल लेख की तुलना करके मैंने देखा कि द्विवेदीजी ने उसे कैसे अच्छे ढंग से शुद्ध और परिमार्जित कर दिया है। मैंने इस तुलना से अपनी भूलें ठीक कीं और आगे के लिये द्विवेदीजी के ढग ही से लिखने का प्रयत्न किया। इसी अभिप्राय से एक दिन मैंने द्विवेदीजी से प्रार्थना की कि जब आप मेरा लेख ठीक कर लिया करें तो उसे छपने जाने के पहले यदि आप मुझे उसको देख लेने का अवसर दे दिया करें तो मैं कुछ सीख जाऊँ। द्विवेदीजी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। बस मुझे एक पोस्टकार्ड द्वारा सूचना मिल जाती थी कि लेख तैयार होगया है। उस समय पोस्टकार्ड एक पैसे का होता था। मैं कार्ड पाते ही गुरुद्वारे पहुँचता था और अपनी ग़लतियों को नोट कर लाता था और भविष्य मे उन भूलों से बचने का प्रयत्न करता था। मुझी को नहीं द्विवेदीजी ने सैकड़ो हिन्दी के लेखको को प्रोत्साहन देकर मातृभाषा की सेवा करने के योग्य बनाया है। श्री गणेशशकर विद्यार्थी, श्री वेंकटेश नारायण तिवारी आदि मेरे कई एक मित्र द्विवेदीजी के अखाड़े ही से हिन्दी लिखना सीखे हैं।

द्विवेदीजी का स्वभाव कुछ उग्र था। अतः उनकी शिष्य-मण्डली सदा इस बात का ध्यान रखती थी कि वे नाराज़ न हो जायें। अगर वे नाराज़ हो जाते तो रात को उन्हें नींद नहीं आती थी। धीरे-धीरे उन्हे निद्रानाशक रोग भी हो गया था। इसी उग्र स्वभाव के कारण उनकी बहुत कम लोगों से पटती थी। साहित्यिक क्षेत्र मे भी उनकी एक बार जिससे ठन गई वह सदा चलती रहती थी जैसे बाबू श्यामसुन्दरदास से उनकी नोक-झोक हमेशा चलती रही। बालमुकुन्द गुप्त और द्विवेदीजी की साहित्यिक लड़ाई काफी दिन चली। गुप्त जी "आत्माराम" के नाम से भारतमित्र मे लिखते थे और द्विवेजी जी "कल्लू अल्हित" के नाम से पहले तो 'सरस्वती' मे और बाद को 'बंगवासी' मे

लिखते रहे। इन दोनों महारथियों में ख़ूब चली और एक दूसरे के काफी लत्ते लिये। द्विवेदीजी ने एक बार लिखा था :—

"पर के जानें पढ़ें फारसी, चिलमैं भरत दिनौना जाय।"

द्विवेदीजी ने साहित्यालोचना का युग चलाया और स्वयं भी कई वृहत आलोचनायें लिखीं। उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं और कई का अनुवाद किया है। उनके 'मिल' की 'स्वाधीनता' 'स्पेन्सर' की 'शिक्षा' के अनुवाद बड़ी उपयोगी पुस्तकें हैं। वह कवि भी थे किन्तु आगे चलकर कविता को अपना क्षेत्र न समझ कर उन्होंने उससे हाथ खींच लिया। 'काव्य-मंजूषा' उनकी पुरानी कविताओं का संग्रह है। श्री मैथिलीशरणजी को द्विवेदी-जी से पर्याप्त प्रोत्साहन मिला और वह उन्हें अपना गुरु भी मानते हैं। द्विवेदीजी की एक छोटी सी कविता प्रताप के मुख-पृष्ठ पर निकलती है। इसे उन्होंने इन पंक्तियों के लेखक के अनु-रोध से बनाया था :—

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है॥"

पुस्तकों की आलोचना करने में द्विवेदीजी पुस्तक के गुण-दोष बतलाते हुए सदा लेखकों को प्रोत्साहित ही करते थे। वह अनेक लेखकों को 'सरस्वती' से पुरस्कार दिलवाते थे और मुझे भी अकसर उनकी कृपा से पुरस्कार मिले हैं।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन से द्विवेदीजी कुछ रुष्ट हो गये थे और इसका कारण मेरी समझ में यह था कि वे प्रथम साहित्य सम्मेलन के सभापति नहीं बनाये गये। उनकी यह नाराजगी बनी ही रही। कई बार अनुरोध किये जाने पर भी उन्होंने सम्मेलन का सभापति बनना कभी भी स्वीकार नहीं किया, और इतने बड़े महारथी होने पर भी एक बार भी सम्मे-

लन के सभापति नहीं बने जब कि उनसे बहुत छोटे लोग सम्मेलन के सभापति हो चुके हैं। हाँ, इतना जरूर हुआ कि कानपुर मे साहित्य सम्मेलन होने के समय उन्होंने अपने शिष्य-समुदाय के बड़े ही आग्रह से उसका स्वागताध्यक्ष होना स्वीकार कर लिया और सम्मेलन मे सम्मिलित भी हुए। कदाचित् यही एक ऐसा अवसर था जब कि उन्होंने साहित्य सम्मेलन मे भाग लिया था। किन्तु साहित्य सेवियों ने उनका मान करने के लिये उन्हे एक अभिनन्दन ग्रन्थ बनारस मे भेंट किया और बड़ी धूम-धाम से उत्सव मनाया। बाबू श्यामसुन्दर दास की वजह से वह काशी नागरी प्रचारिणी सभा से भी कुछ रुष्ट ही रहे। परन्तु अन्त में अपना बहुत उत्तम पुस्तक-संग्रह नागरी प्रचारिणी सभा ही को दे गये।

द्विवेदीजी का शरीर काफी लम्बा-चौड़ा था। मूछें बड़ी-बड़ी और भौहों के बाल अधिक घने और लम्बे थे। वह सदा अत्यन्त छोटी बाढ़ की काली टोपी पहनते थे। इसमे उन्होंने कभी परिवर्तन नहीं होने दिया। वह 'सरस्वती' के सच्चे उपासक थे। उन्हे साहित्यिक साधना और प्रयोग करने के लिये प्रचुर साधन और पर्याप्त अवसर मिले। उनके निधन से हिन्दी ने एक महान साहित्यकार खो दिया। परन्तु साहित्य के क्षेत्र में उनकी पदवी निर्णीत है और उनका नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे लिखा रहेगा। साहित्य पर उन्होंने अपनी मुद्रा अंकित कर दी है और लेखन के क्षेत्र मे उन्होंने ऐसी निपुणता दिखलाई कि लोगो ने उन्हे असाधारण लेखक माना और आचार्य की पदवी से विभूषित किया। वे ऐसे समय मे साहित्य क्षेत्र मे उतरे जब साहित्य के पुराने संस्कार शनैः-शनैः नष्ट होकर मिट रहे थे और हिन्दी साहित्य के नवीन युग का श्रीगणेश हो गया था। उन्होंने साहित्य के अंगो मे नया जीवन

प्रेरित किया। यद्यपि द्विवेदीजी नहीं रहे किन्तु जब तक उनकी रचनाएँ और सरस्वती की फाइलें मौजूद हैं तब तक हम उनसे शिक्षा लेते रहेंगे। ये ही उनका सबसे बड़ा स्मारक अथवा स्मृति-दर्पण हैं। जब-जब हम उनकी रचनाओं का पाठ करेंगे तब-तब उनका प्रतिभापूर्ण व्यक्तित्व हमारे सामने आता रहेगा।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी के युग-प्रवर्तक साहित्यकार थे। उनकी दृष्टि गद्य के क्षेत्र में, पद्य के क्षेत्र में, और साहित्य के अनिर्मित अंग के निर्माण पर गई थी। द्विवेदी-युग हिन्दी-भाषा की प्रौढ़ता का युग था, जिसमें उसकी प्रांजलता, अभिव्यक्ति-सक्षमता, पूर्णतः विचारशील, और भाव-समर्थ साहित्य का बहुल निर्माण हुआ। संशोधन, मार्जन आदि द्वारा उन्होंने हिन्दी-भाषा को इस योग्य बना दिया कि उसके माध्यम द्वारा सभी प्रकार के भाव और विचार व्यक्त हो सकें।

साहित्य के विभिन्न अंगो के निर्माण के सम्बन्ध मे आचार्य द्विवेदीजी ने कुछ अंगो के निर्माण मे स्वतः हाथ बटाया और जिन अंगों के निर्माण मे वे सहायक न हो सके, उनके निर्माण के लिए योग्य व्यक्तियो का आह्वान कर अनेक प्रकार से उनकी सहायता की।

वे एक पूर्णतः सफल आलोचक थे। साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र मे उनका कार्य विशेष महत्वपूर्ण रहा है।

द्विवेदीजी पत्रों का उत्तर बहुत शीघ्र देते थे।

द्विवेदीजी का जन्म सन् १८६४ मे रायबरेली जिले के दौलतपुर गाँव मे हुआ था। उनके माता-पिता की आर्थिक अवस्था ठीक न थी अतः वे लड़कपन में ठीक-ठीक पढ़-लिख न सके। शुरू-शुरू मे कुछ हिन्दी, कुछ संस्कृत, कुछ उर्दू और कुछ

अंगरेज़ी सीख सके। अंगरेजी पढ़ने के लिये उन्हें अपने गाँव से ३६ मील दूर ज़िले के स्कूल में जाना पड़ता था। जब वे थोड़ी-बहुत काम-चलाऊ अंगरेज़ी जान गये तब उन्हें जाकर अजमेर में नौकरी करनी पड़ी। अजमेर से वे अपने पिता के पास बम्बई चले गये। वहाँ उन्होंने तार का काम सीखा और फिर रेलवे में तार बाबू हो गये। रेलवे की नौकरी करते हुए उन्होंने अपना पढ़ना-लिखना नहीं छोड़ा और अपने अथक परिश्रम के कारण कुछ ही दिनों में संस्कृत और अंगरेज़ी के पण्डित हो गये तथा मराठी, गुजराती और बंगला आदि भाषाएँ भी जान गये।

ऊपर द्विवेदीजी की कविता के सम्बन्ध में कुछ लिखा जा चुका है किन्तु यह बात रह गई थी कि उन्हें हिन्दी में कविता लिखने का शौक़ बचपन ही से था। उन्होंने सन् १८८७ में "विनय-विनोद" नामक एक कविता-पुस्तक छपवाई थी और खूब पढ़-लिख जाने पर वे अपनी संस्कृत और हिन्दी की कविताएँ सामयिक पत्रों में छपवाने लगे थे।

सन् १९०० में इण्डियन प्रेस के स्वामी स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष ने 'सरस्वती' निकाली और द्विवेदीजी का नाम सुन कर उन्हें १९०३ में 'सरस्वती' का सम्पादक नियुक्त कर दिया। उस समय द्विवेदीजी रेलवे में १५०) मासिक वेतन पाते थे। १९०४ में उन्होंने रेलवे की नौकरी छोड़ दी और 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी की सेवा में लग गये। १८ वर्ष तक 'सरस्वती' का सम्पादन करके उन्होंने हिन्दी का रूप स्थिर कर दिया। उनकी हिन्दी की सेवा और लगन के कार्य को देखकर हिन्दी प्रेमियों ने काशी में उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पण किया, और प्रयाग में 'द्विवेदी मेला' लगाया। हिन्दी का यह महान सेवक ७४ वर्ष की आयु में २१ दिसम्बर १९३८ को स्वर्ग सिधार गया। वे स्वभाव के

खरे, निडर और बड़े स्वाभिमानी, साथ ही विनम्र और हँसोड़ थे।

उनकी धर्मपत्नी का स्वर्गवास उनके सामने ही हो गया था। उनकी स्मृति को बनाये रखने के लिये द्विवेदीजी ने ही दौलतपुर में एक मन्दिर बनवा दिया है जहाँ उनका चित्र लगा हुआ है।

द्विवेदीजी के पत्र-व्यवहार का एक नमूना

सन् १९२३ के अक्टूबर महीने में आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने काशी नागरी प्रचारिणी-सभा को एक पत्र लिखा था; वह पत्र यहाँ उद्धृत किया जाता है।

जूही कलाँ, कानपुर

१९—१०—२३

महाशय,

मेरी पुस्तकों का जो संग्रह यहाँ कानपुर में है उसे आपने देखा ही है। वह पड़ा-पड़ा यहाँ बरबाद हो रहा है। मैं उसे ना० प्र० सभा, काशी को दे डालना चाहता हूँ, उसकी इच्छा हो तो ले ले, शर्त कोई नहीं, जो शर्त वह करे वही मंजूर। पुस्तकें योंही सटपट हैं। मगर जो कुछ है हाजिर है। दौलतपुर में भी संग्रह है, वह इतना ही या इससे कुछ अधिक ही होगा। पुराणादि भी वहीं हैं, उसे भी देने का विचार कुछ समय बाद करूँगा।

मैं कानपुर में शायद ही महीना भर रहूँ; पुस्तकें ग्रहण करना मंजूर हो तो किसी को भेज दीजिये, वह फ़ेहरिस्त बना डाले। एक कापी मुझे दे दे, एक ले जाय। रहे शहर में, काम करने जुही आवे, क्योंकि यहाँ रहने की जगह नहीं। मेरे खपरैल में सिर्फ दो कमरे हैं। एक पुस्तकों के लिये, एक भीतर।

पुस्तकें चीड़ के बक्सों मे बन्द करके या बंडल बनाकर बोरियों मे भर कर जिस तरह सुभीता हो ले जाय।

मेरे यहाँ न रहने के कारण बहुत पुस्तकें बरबाद हो गईं, कुछ उठ गईं, कुछ की जिल्दें चूहों ने कुतर डालीं, इससे जल्द उठाना चाहिये।

जिस लड़के को मैंने अपनी छोटी भानजी दी है वह म्यूर कालेज के फोर्थ इयर में है, संस्कृत भी उसके कोर्स मे है, दस-बीस संस्कृत की पुस्तकें उसके लिये रख लूँगा।

मेरे समय की सरस्वती की १७ वर्ष की हस्तलिखित कापियाँ मेरे पास हैं, किसी समय भविष्य मे वे शायद मूल्यवान समझी जायँ। उनको देखने से पता चलेगा कि आजकल के हिन्दी के अनेक धुरन्धर लेखक किस तरह राह पर लाये गये थे। वे भी दे डालूँगा, सभा चाहे तो जिल्द बंधाकर रख छोड़े, कुल पत्र व्यवहार भी रखने को दे दूँगा। अपनी कई पुस्तकों की भी हस्तलिखित कापियाँ दूँगा।

मेरी अनेक पुस्तकों की कापियाँ सभा मे मौजूद होंगी। पर बहुत की न भी होंगी।

मासिक पुस्तकों की जिल्दें बहुत हैं, अंगरेजी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बँगला की भी पुस्तकों का संग्रह है। सब खिचड़ी है, सूची कोई नहीं।

आपका—

महावीर प्रसाद दिवेदी

× × ×

यह पत्र सभा की प्रबन्ध-समिति में उपस्थित किया गया और सादर स्वीकृत हुआ। इसकी सूचना पाकर

आचार्य द्विवेदीजी ने २ नवम्बर सन १९२३ को यह कार्ड लिखा :—

जूही कलाँ, कानपुर
२—११—२३

श्रीमान्,

मिती १४ कार्तिक का पत्र १३०६: ३९ मिला। सभा का निश्चय जाना, मंजूर है। जहाँ तक हो सके आदमी जल्द भेजिये, दस ही बारह दिन बाद में यहाँ से चला जाना चाहता हूँ, जितनी पुस्तकें उठ सकें उतनी ही सही, बाक़ी फिर मेरे आने पर उठवा लीजियेगा।

आलमारियों का प्रबन्ध कर रखिये, दौलतपुर की भी पुस्तकें यदि मैंने दीं तो आठ-दस अलमारियाँ कम से कम दरकार होंगी।

पत्र-व्यवहार छाँटना है, दे सकूँगा तो कुछ अभी दे दूँगा। बाक़ी फिर। ये पत्र बन्द रहें, ताले-कुञ्जी में रहें, चाभी मन्त्री के पास रहे। इनका उपयोग यदि कभी किया जाय तो मेरे नाम शेष हो जाने पर; यह कहीं लिख रखिये। कार्ड की पहुँच लिखिये—

आपका—महावीर प्रसाद

इसके बाद सभा के कर्मचारी ने जुही जाकर पुस्तकें आदि समेट कर काशी भेजने की व्यवस्था की। द्विवेदीजी की दी हुई बहुमूल्य सामग्री 'आर्य-भाषा पुस्तकालय' की आठ अलमारियों में सुरक्षित है और जनता के उपयोग में आ रही है। सरस्वती और अन्य पुस्तकों की प्रेस कापी 'कला भवन' में सुरक्षित है। उस विषय की रुचि रखने वाले जो लोग वह सामग्री देखना चाहते हैं उन्हें सूचना पाकर यह दिखाई जाती है।

सभा के गत अर्द्ध-शताब्दी उत्सव के समय कला भवन ने "उसने कहा था" शीर्षक कहानी की कापी प्रदर्शन के लिये रक्खी भी थी। भीड़-भाड़ मे ऐसी वस्तुओं का निरीक्षण ठीक-ठीक नहीं हो सकता, इसके लिये तो अलग समय निर्धारित किया जा सकता है।

द्विवेदीजी के नाम आये हुए पत्रो का जो संग्रह सभा-कार्यालय मे है उसे देखने की जिन्होंने इच्छा की उनको दिखाया गया है। सर्व श्री प्रेमनारायण टण्डन, नयनचन्द्र मुखोपाध्याय, उदयशङ्कर भट्ट, केदारनाथ भट्ट और ठाकुर उदयभानु मिश्र (लखनऊ विश्वविद्यालय) आदि ने इसे देखा है।

सभा को अयाचित सात्विक दान प्राप्त हुआ है और यह आचार्य द्विवेदोजी की थाती है, जो उनकी आज्ञा के अनुसार सुरक्षित है, कोई भी अधिकारी व्यक्ति पहले से सूचना देकर स्वीकृति मिलने पर इनको देखे और अपने दायित्व पर इसका उपयोग करे; सभा को इसमे प्रसन्नता ही होगी।

समस्त पत्रो को पढ़ने और उनकी तालिका बनाने के लिये समय और परिश्रम अपेक्षित है; सभा ने इस पत्र-संग्रह को छॉटने के लिये गत जुलाई मास मे तीन सज्जनो की एक उप-समिति बनाई थी, उपसमिति ने विचार करके ये सुझाव उपस्थित किये हैं—

१—द्विवेदी जी के पत्र-संग्रह की एक तालिका तैयार करके प्रकाशित की जाय, इसमे पत्र की तिथि, पत्र भेजने वाले का नाम तथा पत्र का संक्षिप्त सार रहे, उसकी केवल २५० प्रतियॉ अभी छापी जायॅ।

२—पत्र-संग्रह में कुछ पत्र एकदम निजी हैं, उनका कोई साहित्यिक महत्व नहीं है, पर उनमें द्विवेदी जी का जीवन-चरित्र लिखने के लिये काफी ऐतिहासिक सामग्री मिल सकती है, ऐसी सामग्री अलग से एकत्र कराई जाय।

३—संग्रह में कुछ साहित्यिकों के भी पत्र हैं, उनका साहित्यिक महत्व है, उन्हें अविकलरूप से प्रकाशित किया जाय। यदि पुस्तकाकार तत्काल प्रकाशित न हो सकें तो किसी मासिकपत्र में या सभा की मासिकपत्रिका में प्रकाशित कर दिया जाय।

यथावसर इसकी पूर्ति की जायेगी।

देशबन्धु चित्तरंजनदास

विक्रमपुर नगर के तेलोरबाग नामक ग्राम के जगदबन्धुदास मुख्तार बड़े दानी और दीन-दुखियों के सहायक थे। उनके एक-मात्र पुत्र भुवनमोहन बाबू कलकत्ता हाईकोर्ट के नामी वकील बड़े निर्भीक, तेजस्वी और स्पष्टवादी पुरुष हुए। इनकी दान-शीलता सीमा रहित थी और इसी कारण वे सदैव ऋण-ग्रस्त रहे। फलस्वरूप उन्हें अपने को दिवालिया घोषित करना पड़ा।

पटलडॉगा स्ट्रीट में भुवनमोहनदास के कलकत्ते के निवास-स्थान मे ५ नवम्बर सन् १८७० को उनके पुत्र चित्तरंजनदास का जन्म हुआ। प्रारम्भ ही से चित्तरंजन की शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया गया। भवानीपुर की लण्डन मिशनरी सोसाइटी के स्कूल से प्रवेशिका परीक्षा पास करके वे कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज में भर्ती हुए और यहीं से सन् १८९० मे उन्होंने बी० ए० पास किया। विद्यार्थी जीवन से ही साहित्य में उनकी विशेष अभिरुचि थी। थोड़े दिन पश्चात् वे सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिये विलायत गये। वहॉ के अध्ययन-काल ही मे उन्होंने भारत के वृद्ध-वशिष्ठ स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी की पार्लियामेंट की मेम्बरी की उम्मेदवारी की अपनी वक्तृताओं से धूम बॉध दी। कदाचित् इन्हीं वक्तृताओं के कारण उन्हें सिविल सर्विस की नौकरी से हाथ धोना पड़ा और सम्मान सहित वैरिस्टरी की परीक्षा पास करके सन् १८९३ मे वे स्वदेश को लौट आये। वैरिस्टरी आरम्भ करते ही उनकी योग्यता की धाक जम गई। उनकी प्रतिभा उस समय चमक उठी जब श्री अरविन्द घोष पर अलीपुर बम-काण्ड का मुकद्दमा चलाया गया।

अर्टली नार्टन सरकारी वकील थे, श्री अरविन्द की ओर से देश-बन्धु खड़े हुए। अधिकारीगण अरविन्द बाबू को फँसाने के लिये तुले बैठे थे। अभियोग संगीन था, जमाना इतना बुरा था कि 'वन्देमातरम्' कहने पर सजाएं होती थीं, मुक़दमे के समय में ही मुक़दमे से सम्बन्ध रखने वाली दो हत्याएँ हो गईं—किन्तु श्री अरविन्द साफ छूट गये। समस्त संसार चकित रह गया। यहीं से भारत के राजनैतिक क्षितिज में देशबन्धु का आगमन होता है। वे एक प्रकाशमान उल्का की तरह आये और अपना प्रकाश फैलाते हुए सर से निकल गये।

उनकी वकालत के सम्बन्ध में यह कहना भी आवश्यक है कि उन्होंने षड्यंत्रकारियों, नजरबन्दों और अन्य राजनैतिक अपराधियों के बीसियों मुक़दमों की पैरवी की और उन्हें बिना फ़ीस ही के लड़ा। इनमें से अधिकांश में उन्हें सफलता मिली। बढ़ते बढ़ते उनकी आमदनी पचास हजार रुपये प्रति मास की हो गई थी। उनके क़ानूनी ज्ञान का लोहा सरकार भी मानती थी। एक मुकद्दमे में सरकार ने उन्हें कागजात देखने के लिये एकमुश्त पचास हजार रुपये दिये थे और पैरवी करने के लिये प्रति दिन १५ हजार रुपये अलग देने का वादा किया था। अपने व्यवसाय को उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा कर, देशहित के लिये उसे मिट्टी के ढेले की तरह ठुकरा देना देशबन्धु जैसे महान पुरुष का ही काम था। उनका त्याग अतुलनीय था।

कलकत्ते की विशेष कांग्रेस में उन्होंने असहयोग का विरोध किया था क्योंकि वह कौंसिल पर क़ब्ज़ा रखना चाहते थे। नागपुर की कांग्रेस तक वह असहयोग के पूर्ण रूप से समर्थक नहीं थे। जब महात्माजी ने उनकी इच्छानुसार प्रस्ताव में आवश्यक सुधार कर दिया तब उन्होंने उसे स्वीकार किया। जेल से लौटने

के बाद गया कांग्रेस मे उन्होने फिर अपना मत कौंसिलों पर अधिकार करने का पेश किया और जब उनका मत कांग्रेस ने नहीं माना तो उन्होंने 'स्वराज्य पार्टी' की स्थापना की। यहीं पर मुझे उन्हें पास से देखने का अवसर मिला और उनमें मेरी श्रद्धा बढ़ी और मैं भी 'स्वराज्य पार्टी' में शामिल हो गया। जब मैं अपने 'विक्रम' के लिये उनके पास उनके सभापति वाली व्याख्यान की कापी लेने गया तो सुभाष बाबू ने, जो उस समय उनके प्राइवेट सेक्रेटरी थे, कापी देने से इन्कार कर दिया। किन्तु दास बाबू के पास स्लिप भेजने पर उन्होंने मुझे बुलाया और अपने व्याख्यान की एक कापी तुरन्त मुझे दी। मैंने उसका सारांश बना कर फौरन 'विक्रम' के लिये कानपुर तार द्वारा भेज दिया जो यू० पी० के अन्य हिन्दी पत्रों में सबसे पहले प्रकाशित हुआ। यह दास बाबू ही का दम था जो स्वराज्य पार्टी फली-फूली और आगे चल कर उसने कांग्रेस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

एक बार A I C C. की मीटिंग मे यद्यपि दास बाबू की हार थोड़े से वोटों से हुई थी, किन्तु महात्माजी ने उसे अपनी हार मानी और दास बाबू से कहा कि Yours is the moral victory अर्थात् 'नैतिक जीत तुम्हारी हुई।' बंगाल में स्वराज्य पार्टी की विजय स्थापित करने ही के उद्देश्य से दास बाबू केन्द्रीय धारा-सभा में नहीं गये और केवल बंगाल कौंसिल के ही सदस्य रहे। जिस समय सरकारी पक्ष को हराने के लिये वह पटना से कलकत्ते आ रहे उस समय 'Statesman' ने एक लेख लिखा था जिसका शीर्षक था—'The wrecker comes' अर्थात् 'ध्वंसक आ रहा है।' बंगाल की सरकार दास बाबू से कॉपती थी और उन्होने अपनी चतुराई से ही सरकार को परास्त किया। उन्होने अपने विरोधी पक्ष के एक सदस्य को धन से और दूसरे को बल से रुकवा दिया और अपना बहुमत करके

सरकार को नीचा दिखा दिया। अपने उद्देश्य को सफल बनाने में वह हर प्रकार के उपाय को काम में लाते थे। उन्हें अर्जुन की तरह चिड़िया का मुंह ही दिखलाई देता था। कार्य सफल हो चाहे जैसे भी हो, यह उनका मूल-मंत्र था। वह स्वराज्य-पार्टी के प्राण थे और स्वराज्य-पार्टी ने भारतीय राजनीति में अपना कौशल यथा समय दिखला दिया।

दास बाबू की व्याख्यान शैली बड़ी प्रभावपूर्ण और तर्कपूर्ण होती थी। उनके अनेक व्याख्यान हैं और कदाचित ही कोई संग्रह निकला हो। अच्छा हो यदि कोई उत्तम संग्रह निकल जाये। दास बाबू द्वारा स्थापित 'फार्वर्ड' पत्र के विशेषांकों में उनके कुछ व्याख्यान मिलते हैं।

देशबन्धु परले सिरे के बैरिस्टर होने के साथ-साथ अत्यन्त उच्च कोटि के कवि भी थे। सन् १८९५ में आपका पहला काव्य "मालञ्च" प्रकाशित हुआ। "माला" "सागर-संगीत" "अन्तर्यामी" और "किशोर-किशोरी" आपकी अन्य कृतियाँ हैं। कुछ लोगों की राय है कि आपकी कविताएँ रवीन्द्र बाबू की कृतियों के पास स्थान पा सकती हैं। साहित्य-सेवियों को आर्थिक सहायता तथा आश्रय देकर आपने साहित्य की पर्याप्त सेवा की थी। इसीलिए सन् १९१७ में आप बाँकीपुर साहित्य-सम्मेलन की साहित्य-शाखा के सभापति चुने गये थे। उन्होंने 'नारायण' पत्रिका का सम्पादन भी किया है। दानी तो वह एक नम्बर के थे। सुना है कि दान देते समय उन्होंने अपनी बैंक की चेक बुक से आना पाई तक की चेक काट दी है। मरते समय वह अपना घर भी अस्पताल को दान कर गये। उनकी दानवीरता राजनैतिक कार्यकर्ताओं में अद्वितीय है।

मैं तो उनका ऐसा भक्त हो गया कि अपने छठे पुत्र का नाम भी 'देशबन्धु' रख दिया जिसे कुछ दिनों बाद उसने स्वयं बदल

कर 'प्रताप' कर लिया, क्योंकि यह नाम हमारे घर के नामों से मिलता नही था। मेरे घर के नाम केवल एक शब्द के हैं और देशबन्धु मे दो शब्द हैं। परन्तु मैं तो देशबन्धु का वैसा ही भक्त आज भी हूँ जैसा उस समय था। यह देश का दुर्भाग्य है कि उन्होंने देश की सेवा करने का थोड़ा ही अवसर पाया, वरना हमारी राजनीति का रूप कुछ और ही होता। परन्तु इस थोड़े ही काल मे वह अपना चमत्कार दिखला गये।

उनका हृदय बड़ा कोमल, स्वभाव बड़ा सरल, और वेषभूषा बिलकुल सादी थी। इतना महान व्यक्ति और इतना बड़ा पंडित होने पर भी उन्हे गर्व छू तक नहीं गया था। देश के महान नेताओं में से होकर उन्हें छोटे से छोटे आदमी से मिलने में तनिक भी सकोच न था। अंग्रेजी के धुरन्धर विद्वान होकर भी वह अपनी मातृभाषा बॅगला मे लिखना अपना मुख्य कर्तव्य समझते थे। उन्होने अपने पिता के दिवालिया हो जाने पर भी उनका ऋण अदा किया था। इसके सम्बन्ध मे यह प्रचलित है कि जज ने उनसे कहा था कि 'You are not legally bound to pay it' अर्थात् 'कानून आपको बाध्य नहीं करता कि आप इस रक़म को अदा करें।' इस पर दास बाबू ने कहा था कि 'I am morally bound to pay it' अर्थात् 'सदाचार मुझे मजबूर करता है कि मैं इस ऋण को चुका दूँ।' इस पर हाईकोर्ट के जज जस्टिस फ्लेचर ने कहा था कि, 'किसी व्यक्ति ने दिवालिया होकर भी अपना समस्त ऋण चुकाया हो—संसार के इतिहास मे इस बात का उदाहरण आज मैं पहिली बार देख रहा हूँ।' उन्होने लाखो रुपया पैदा किया और उसका अधिकतर भाग देश-हित के कार्यों ही मे ख़र्च किया। धन्य हो दास बाबू धन्य! तुम में थी साधना, त्याग और निरन्तर सेवावृत्ति।

श्री अरविन्द घोष ने देशबन्धु के सम्बन्ध में एक बार कहा था :—

'सारे बंगाल में चित्तरंजन ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें भविष्य का साक्षात् दर्शन और अवसर का उपयोग नामक दो गुणों का सुन्दर सम्मिश्रण मौजूद है।'

दान के सम्बन्ध में देशबन्धु ने एक समय कहा था, 'जिस समय मैं दान देता हूँ, तो मैं यह नहीं समझता कि मैं किसी दूसरे को दे रहा हूँ। मैं तो यह अनुभव करता हूँ कि मैं अपने ही को दान दे रहा हूँ। मेरी भाषा में इसका वर्णन इस प्रकार है कि भगवान मेरे द्वारा उसे अपने को दे रहा है।'

देशभक्ति के सम्बन्ध में आपका कहना है कि—'मैं देश-भक्ति में विश्वास नहीं करता। मैं कोई देश-भक्त नहीं हूँ; मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ और मेरा देश ही मेरे लिये ईश्वर की महिमा का साकार स्वरूप है।'

दास बाबू के भाषण देश-भक्ति के भावों के साथ ही सदैव आध्यात्मिक भावों से भी ओतप्रोत रहते थे। उनके निम्नलिखित उद्गार पढ़कर पाठकों के हृदय में साहस और दृढ़ता के श्रेष्ठ भाव उदय होंगे :—

१—हम शिक्षित लोग, क्या मनुष्य हैं? कब हम हृदय पर हाथ रखकर कह सकेंगे कि हम मनुष्य हैं? जिस शिक्षा-दीक्षा ने हमको अमानुष बना दिया है उसको ध्वंस करके ही हम लोग पुनः मनुष्य बन सकेंगे। प्रिंसिपल (Principal) अपूर्व बाबू कहते हैं कि Destruction (नाश) के पहिले Construction (निर्माण) की दरकार है। क्या मैं Destroy (नाश) करने आया हूँ? मैं किसका ध्वंस करने के लिये आया हूँ? उसको, जिसने हमको अमानुष बना दिया है।

२—जो भूखा हो वह किस प्रकार समझा सकता है कि वह क्यों अन्न चाहता है—आहार चाहता है ? क्या वह युक्ति के द्वारा समझा सकता है, क्या वह तर्क करके प्रमाणित कर सकता है कि क्यों स्वराज्य चाहिये ? मेरे हृदय मे ज्वाला धधक रही है। मैं कहता हूँ स्वराज्य चाहिये। दासत्व की ज्वाला से जलकर मर रहा हूँ इसलिये स्वराज्य चाहता हूँ।

३—हमारा और हमारी जाति का हृदय पापो से मलिन तथा आच्छादित होने के कारण स्वराज्य प्रतिफलित नहीं हो रहा है। स्वराज्य पाने पर प्रायश्चित करना होगा। किसके कारण मलिनता हुई, क्यो हमारा जातीय जीवन इस प्रकार नष्ट और अपवित्र हुआ, उसे खोजकर निकाल बाहर करना होगा, और साथ ही उन दुष्कर्मों को भी दूर कर देना होगा।

४—स्वराज्य तो आपको लेना ही होगा। स्वराज्य प्राप्त करना आपका धर्म है। उस धर्म का पालन आपको करना ही होगा। प्रत्येक युग मे भगवान् की वाणी यही है कि आपको स्वराज्य की उपलब्धि करनी होगी, जो आपका धर्म है उसे आपको ग्राह्य करना ही होगा। आप कब तक ऐंठ कर चलेंगे, युग-धर्म को क्या कोई हटा सकता है ? मिथ्या तर्क-जाल मे अब और कब तक आप अपने को बाँधे रहेंगे ? भगवान की वाणी किसी न किसी दिन अवश्य ही हृदय मे जागेगी।

५—इस राक्षसी शिक्षा के कारण हम लोगो का यह घृणित स्वभाव पड़ गया कि जिन लोगो ने अंगरेजी की शिक्षा नही पायी है उनको हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं;

उनको बेवकूफ अशिक्षित, निरक्षर कहते हैं और उनकी अज्ञता पर हँसते हैं। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि हमारे यह अपठित देश-वासी सहृदय हैं; अतिथियों का सत्कार करते हैं; अपने कष्टापन्न पड़ोसियों के साथ समवेदना करते हैं, हमको शाब्दिक शिक्षा से जितना लाभ नहीं हुआ है, उतना लाभ उनको अनुभव-जन्य शिक्षा से हुआ है।

६—स्वायत्त-शासन हमारा नैसर्गिक स्वत्व है; यह प्रत्येक-व्यक्ति का स्वत्व है कि वह जीवित रह सके और वृद्धि पा सके। यह स्वत्व हमसे बहाना करके और धोखा देकर अन्याय से छीन लिया गया; परन्तु अब हम चैतन्य हैं। अब हम धोखेबाजों को पहचान गये हैं। अब हम उनकी दाल न गलने देंगे। अभी तक हम सोते थे पर अब ईश्वर की कृपा से जाग गये हैं और अपना स्वत्व चाहते हैं।

७—इस शासन-प्रणाली को—जिसके कारण संसार में हमारा मस्तक नीचा हो रहा है—कौन चला रहा है? यह नौकरशाही कौन है? इस कल को चलानेवाले कौन हैं? चलाने वाले हैं भारतीय हिन्दू और मुसलमान। उस कल को बिना विघ्न-बाधाओं के चलाने के कारण ही हम पर इतना दुःख—इतनी मलिनता की सृष्टि हुई है। इसी से कांग्रेस की आज्ञा है कि—हिन्दू मुसलमानों की एकता करके पाप का प्रायश्चित करना चाहिये। आत्म-शुद्धि के द्वारा स्वराज्य स्थापन करिये। यह शासन-चक्र ही हमारे लिए मारण-यंत्र है। इस पेषण के कल को अब और मत चलाइये। हाथ खींच लीजिये—बस यही भारतवासियों का प्रायश्चित है। यह प्रायश्चित जिस दिन आप करेंगे

उस दिन आपका हृदय, आपकी जाति का हृदय, पवित्र हो जायगा और उसी दिन स्वराज्य भी होगा।

८—जो साधना भारतवर्ष के इतिहास के पन्ने-पन्ने में निहित है, जिसका इशारा आज हमें सुनाई पड़ रहा है, वह साधना जागेगी, अवश्य जागेगी। यह विधाता की लीला है। यदि आप उस लीला का सहचर होना नहीं चाहते तो आपका नाश हो जायगा,—आप कभी रह नहीं सकते, मर जायँगे। इसी से कहता हूँ भाई, आज शान्ति पथ पर आइये, आज यदि नहीं आइयेगा तो कल आपको निश्चय ही आना होगा। मृत्यु आपके द्वार पर दण्डायमान है, यह सुनिये भगवान के रथ-चक्र की घर्घरध्वनि, इच्छा हो तो देखिये! चारों ओर इस जाति के जातित्व की धारा बहती जा रही है, यह जाति अवश्यमेव जागेगी। देखिये चारों ओर रुद्र शक्ति की प्रचंड लीला! यह जाति उठेगी, अवश्य उठेगी। इधर जनता उठ रही है। ऐ मेरे डरपोक भाइयो! स्वार्थान्ध हो इस समय आप क्या कर सकेंगे? भय और स्वार्थ को ठोकरों से दूर कर दीजिये!

९—मैं अपने देश को प्यार करता हूँ, मुझे अपनी स्वतन्त्रता से प्रेम है, मैं अपना अधिकार, जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त करूँगा कि मैं स्वयं अपने काम-काजों का प्रबन्ध करूँ।

१०—संसार में कोई भी राष्ट्र वास्तव में स्वतन्त्र हो ही नहीं सकता जब तक अन्य राष्ट्र बन्धन में हैं।

११—हमें मिलकर सोचने की आदत उत्पन्न करनी चाहिये।

१२—राष्ट्रीय मन के प्रत्यक्षीकरण का नाम ही स्वराज्य है।

मिसेज़ एनीबीसेन्ट

जिस समय मैं कालेज में पढ़ता था उन दिनों मुझ पर धार्मिक विचारों का प्रभुत्व था। उन्हीं दिनों में मैंने मिसेज बीसेन्ट के पेम्फलेट पढ़े और मुझे वे ख़ूब पसन्द आये। फिर तो मैंने प्रायः उनकी लिखी हुई समस्त पुस्तकें पढ़ डाली और मैं उनका भक्त बन गया। "धर्म" नामक उनकी एक छोटी सी पुस्तक का मैंने ख़ूब मनन किया और उसके समझने में जो कठिनाई हुई उसको अपने शिक्षक बाबू गोविन्द प्रसाद वर्मा से हल कराया। उक्त पुस्तक का सार भी मैंने लिख डाला। अब मैं मिसेज बीसन्ट के विचारों से पूर्णरूपेण अवगत हो गया। उनके कई व्याख्यान भी सुने। उनकी पुस्तकों और उनके व्याख्यानों में भारतीय सभ्यता की छाप थी और हिन्दू विचारों की वे पृष्ठ-पोषक थीं। उनकी पुस्तकों और व्याख्यानों से मुझे अपने प्रारम्भिक सार्वजनिक जीवन में बड़ा प्रोत्साहन मिला है और मैं उनका ऋणी हूँ। उनकी स्वलिखित जीवनी पढ़कर तो मेरी श्रद्धा उनके प्रति और भी बढ़ गई। उसे पढ़ कर तो उनकी दृढ़ता और साहस की प्रशंसा उनके विरोधी को भी करनी पड़ेगी, अपने विचारों के लिये अपना सर्वस्व त्याग देना और अनेक कष्टों का सामना करना उन्हीं ऐसी वीर महिला का काम था। वे अथक परिश्रम करने वाली, जीवन पर्यन्त विरोधियों से युद्ध करने वाली थीं। उनके विचारों के प्रभाव ही के कारण उस समय के कानपुर के थियासोफिस्टों से मेरा संसर्ग हो गया जो सबके सब बड़े ही सज्जन पुरुष थे। उनमें से विशेष उल्लेखनीय श्री मन्मथनाथ मुकर्जी, श्री हरानचन्द्र दे और श्री नन्दलाल भादुड़ी हैं। इन

दिनों यद्यपि मैं Official थियासोफिस्ट तो न था परन्तु मैं वास्तविक रूप से एक पक्का थियासोफिस्ट था।

थियासोफिस्ट लोगो की विचार-धारा साम्प्रदायिक न होकर राष्ट्रीय होती है। उनमे से अधिकतर मिसेज बीसेन्ट की देन हैं। डा० भगवानदास जी थियासोफिस्ट और मिसेज बीसेन्ट के भक्त रहे हैं।

मिसेज बीसेन्ट के व्याख्यानो में स्फूर्ति रहती थी उनकी भाषा मे ओज था। जिस समय वह उछल-उछल कर व्याख्यान देती थी उस समय जनता मंत्र-मुग्ध सी रह जाती थी। अपने व्याख्यानो और पुस्तकों से उन्होंने देश मे धार्मिक पुनरुत्थान की एक लहर सी पैदा कर दी और खास कर हिन्दुओ मे हिन्दू धर्म के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी। धार्मिक जागरण के लिए हिन्दू समाज उनका वैसा ही ऋणी है जैसा कि स्वामी दयानन्द का। इन्ही दोनो ऋषियो की कृपा से हिन्दू धर्म की बहुत कुछ रक्षा उस समय हुई है और प्राचीन हिन्दू आदर्श पुनर्जीवित हो गया है।

बनारस मे सेन्ट्रल हिन्दू कालेज स्थापित करके और उसकी मुख-पत्रिका 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज मेगजीन' निकाल करके भी मिसेज बीसेन्ट ने हिन्दू जाति का बड़ा उपकार किया है। इस मेगजीन में मैंने भी अपनी शंका समाधान करने के लिये कई बार प्रश्न पूछे थे। हिन्दू कालेज को लेकर ही मालवीयजी का हिन्दू विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है। शिक्षा के सम्बन्ध मे मिसेज बीसेन्ट ने और भी कई स्कूल स्थापित किये थे। लड़कियो का थियासोफिकल स्कूल तो शायद अब भी बनारस मे बड़े अच्छे ढंग से चल रहा है। कानपुर मे भी एक थियासोफिकल स्कूल चला था और जब तक वह रहा उसका एक खास Standard

रहा, जो अन्य स्कूलों में नहीं था। वहाँ के विद्यार्थियों की विशेष बात यह थी कि उनमें सफाई की मात्रा पर्याप्त थी।

राजनैतिक क्षेत्र में भी मिसेज बीसेन्ट ने काफी काम किया। उन्होंने होमरूल लीग स्थापित की जिसकी शाखाएं अनेक शहरों में खुल गई थीं और प्रायः सबने थोड़ा बहुत काम किया। उन्होंने देश को एक झण्डा "हरा और लाल" दिया। इसी की उन्नति करके महात्मा जी ने उसे 'तिरंगा' बना दिया। उनका निर्वासित होना इस बात का सरकारी प्रमाणपत्र है कि वे राष्ट्रीय थीं। जिस समय मिसेज बीसेन्ट नजरबन्द हुईं, उस समय सारे देश में सरकार के विरोध में एक लहर दौड़ गई और हजारों सभायें हुईं। देश ने उनका सम्मान भी किया और उन्हें १९१७ में कांग्रेस की सभानेत्री बनाया। उन्होंने एक प्रथा भी चलाई कि जिस दिन उनका व्याख्यान कांग्रेस में सभानेत्री की हैसियत से हुआ उसी दिन उस व्याख्यान का सार देश के अनेक नगरों में सभाएँ करके सुनाया गया। वे कांग्रेस के कई अधिवेशनों में सक्रिय रूप से सम्मिलित हुईं। उस समय उनकी गणना कांग्रेस के प्रथम पंक्ति के लोगों में थी। वे असहयोग से असहमत थीं अतः उन्होंने 'Commonwealth League' स्थापित की। किन्तु गांधीजी के सामने किसी की नहीं चली अतएव मिसेज बीसेन्ट भी Background में पड़ गईं। जो कुछ भी हो, मिसेज बीसेन्ट हिन्दुस्तान के लिये एक ईश्वरीय देन थीं और हमारी वर्तमान जाग्रति में उनका काफी हाथ है। मैंने उनका अन्तिम व्याख्यान स्थानीय D. A. V. कालेज में सुना था। काफी बुढ़ापा होते हुए भी उनमें पहले की-सी तड़प मौजूद थी।

आयरिश शरीर रखते हुए उनकी आत्मा और विचारधारा भारतीय थी। ऐसा ही उन्होंने अपने जीवन-चरित्र में लिखा है।

वे कहा करती थीं कि भारतवर्ष मेरी दत्तक मातृभूमि है। उनकी भारतीय पोशाक और भारतीय रहन-सहन हमें स्वदेशी वेश-भूषा से रहने की शिक्षा देता है। भारत के राष्ट्रीय जीवन मे उनका एक महत्वपूर्ण स्थान है। उनका कार्यक्षेत्र केवल राजनैतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी भी था। कांग्रेस से अलग होकर वे लिबरल दल मे सम्मिलित हो गईं और एक बार उनके अधिवेशन की सभानेत्री भी रहीं।

वे कलम-शूर और वाक्य-पटु दोनों ही थीं। उनके समय का सार्वजनिक जीवन अपनी बाल्यावस्था मे था और उन्होने उसमे स्फूर्ति उत्पन्न की। उनके जीवन से हमे अपने विचारों के लिये सघर्ष करने की शिक्षा मिलती है। इसी विचार-संघर्ष में जब ईसाई धर्म से उनकी शंकाओ का समाधान न हुआ तो वे कुछ काल के लिये नास्तिक भी हो गईं। परन्तु हिन्दू-शास्त्रों ने उनकी जिज्ञासा को शान्त किया और वे आस्तिकता की ओर लौट आईं।

देवी एनी बीसेन्ट का जन्म सन् १८४७ की पहली अक्टूबर को हुआ था। आज भी हजारो थियासोफिस्ट पहली अक्टूबर को उनका जन्म-दिवस मनाते हैं।

मिसेज़ बीसेन्ट ने धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक विषयो पर बहुत अधिक लिखा है। उनके कुछ वाक्य नीचे दिये जाते हैं :—

१—जब तक लड़कियो को भी शिक्षा नहीं दी जायगी, जब तक वे पढ़ाई न जायँगी और जब तक वे प्राचीन भारत की महत्ता अपने गोद वाले बच्चों को सिखाने योग्य न हो जायेंगी कि भारत क्या था और उसका भविष्य क्या हो सकता है, जब तक भारतीय माताएँ भारत की

प्राचीन आदर्श रमणियों के तुल्य न बनेंगी, जब तक वे पुरुषों की भाँति स्वदेशानुरागिणी नहीं होंगी, जब तक वे अपने पति की भाँति मातृभूमि का प्रेम नहीं करेंगी, जब तक बाल्य-विवाह की प्रथा (जिससे पढ़ने-लिखने वाली अवस्था में ही लड़कियाँ, लड़कों और लड़कियों की माता बन जाती हैं) मिटा न दी जायगी और जब तक ब्रह्मचर्य व्रत का कठोर पालन न होगा तब तक यह भारत इसी भाँति रहेगा जैसा आज है और यह निर्बलता दूर न होगी।

२—एक बात जो मेरे हृदय में बड़ी घनिष्ठता से चक्कर लगा रही है वह यह है कि भारतवर्ष और ग्रेट ब्रिटेन की घनिष्ठता बढ़ जाय। ग्रेट ब्रिटेन यह जान जाय कि भारतीयों की गति का झुकाव किस ओर है, और वे क्या चाहते हैं?

३—भारत अब भी इङ्गलैंड से प्रेम करता है, भारत नहीं चाहता है कि अङ्गरेजों से उसका सम्बन्ध टूट जाय। किन्तु वह जिस इङ्गलैंड को प्यार करता है वह लोहे से मढ़ा हुआ प्रेस ऐक्ट; भारत रक्षा क़ानून, सेडीशस मीटिंग ऐक्ट, क्रिमिनल ला एमेंडमेंट ऐक्ट, ताज़ीरात हिन्द की राज-विद्रोह सम्बन्धी व्याख्या और इसी प्रकार सन् १८१८, सन् १८१९ और सन् १८२७ के और भी ख़ौफनाक क़ानून क़ायदे वाला इङ्गलैंड नहीं है। यह इन चीजों का इङ्गलैंड नहीं, जिसे हम प्यार करते हैं। किन्तु वह इङ्गलैंड है क्रामवेल, हैम्पडन, पिम, मिल्टन और शैली का; यह वह इङ्गलैंड है, जिसने मेज़िनी के आपत्तियों से घिरे जीवन को आश्रय दिया। यह वह इङ्गलैंड है जिसने इटली के उद्धारकर्ता गेरीवाल्डी का

उसके हज़ारों साथियों सहित स्वागत किया। यह वह इङ्गलैंड है जिसने राजनैतिक शरणागत लोगों को शरण दी।

४—स्वराज्य पाने से ही हिन्दुस्थान अधिक उन्नति कर सकता है; इसी रीति से अपने शिल्प, व्यापार व खेती में जो कुछ वर्तमान है उसे बचाये रख कर इन सब में सुधार हो सकता है और अपने परिश्रम का फल भोगा जा सकता है।

५—जिन सिद्धान्तो के लिये योरोप मे इङ्गलैंड लड़ रहा है उन सिद्धान्तों के अनुकूल शान्ति और क़ानून से प्रजा को उत्तरदायित्व पूर्ण स्वराज्य देने के निमित्त कहने और आन्दोलन करने के लिये ही हमे सजा दी जाती है।

६—हिन्दू धर्म मे पूर्ण विचार-स्वातन्त्र्य है। "जहाँ तक बन पड़े उतना अधिक विचार करो और इस बात का भय मत करो कि तुमसे गलती हो जायगी।"

७—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रेम और बलिदान को प्रधान समझना चाहिये। अगर आप उन मनुष्यो के जीवन पर निगाह डालेंगे जिन्होने इतिहास मे अपना नाम छोड़ा है तो मालूम होगा कि उनकी सफलता की जड़ मे प्रेम और बलिदान ही का भाव था।

८—तुम जो कुछ चाहो वही अपने को बना सकते हो—श्रेष्ठ या नीच, पवित्र या पापी, चतुर या मूर्ख। अपने निर्माता तुम स्वयं ही हो, अपनी भाग्य-लिपि को तुम स्वयं ही खोदते हो।

———

लाला हरदयाल

सन् १८९८ में एक दिन शाम को भगवतदास के घाट के रास्ते में लाला हरदयाल से भेंट हुई। घुटनों तक ऊँची धोती बाँधे, ऊँचा सा कुर्ता पहने, कंधे पर एक डंडे के ऊपर धोती लटकाये तीन चार साथियों के साथ गप-शप करते हुए आप जा रहे थे। सिवा ऐनक के बाकी सारी वेश-भूषा वज्र देहातियों की-सी थी। उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यही लाला हरदयाल एम० ए० हैं, जो विलायत से अभी हाल ही में लौटे हैं और एक विलक्षण बुद्धि के महापुरुष हैं। परिचय होने के दूसरे ही दिन मैं पं० पृथ्वीनाथ के इटावा बाजार वाले मकान में, जहाँ हरदयाल जी ठहरे थे, पहुँचा और गपशप शुरू हुई। उनके कानपुर मे ठहरने का कारण प० पृथ्वीनाथ के जेष्ठ पुत्र जगमोहन चक थे, जिनसे उनका विलायत का परिचय था। हरदयाल जी लाहौर में एक आश्रम खोलने वाले थे और उसी के लिए उन्होंने कानपुर में कुछ युवकों को पढ़ना छुड़ा कर अपने पास जमा करना शुरू कर दिया था। मिस्टर (अब डा०) ताराचन्द, पंजाब के परशुराम, और दिल्ली के गोविन्द प्रसाद उस समय यहाँ आकर इकट्ठे हो गये थे। सारे दिन पठन-पाठन और राजनीति की चर्चा रहती थी। उनकी बातचीत से अपार ज्ञान टपकता था, हर बात तर्कपूर्ण होती थी, और उनमे बुद्धि तो विलक्षण थी ही। His conversation grave or gay was pervaded by a natural charm, अर्थात् उनकी बातचीत में स्वाभाविक मनमोहकता होती थी। बात चाहे हँसी की हो और

चाहे गम्भीर। मैं भी उनके जुमरे में शामिल हो गया और बराबर २२ दिन, जब तक वे कानपुर में रहे, उनके पास प्रायः सारे ही दिन रहता था। मैं अपनी जिन्दगी के ये २२ दिन सबसे अच्छे समझता हूँ। यह मेरा अहोभाग्य था जो ऐसे महापुरुष के साथ मेरे दिन व्यतीत हुए। महाशय काशीनाथ भी प्रति दिन आते थे और उस विद्वत्मडली के वार्तालाप का आनन्द उठाते थे। हरदयाल जी का मजाक भी राजनैतिक होता था। एक दिन इन पंक्तियों के लेखक के पहुँचते ही बोले "बस आप को Indian ocean के टापुओं का गवर्नर बना दिया।" दूसरे दिन कहने लगे कि "अफगानिस्तान पर हमारा साम्राज्य होने पर वहाँ श्रीमती गायत्री देवी वैसे ही उपदेश करने जायेंगी जैसे हमारे यहाँ मिसेज़ बीसेन्ट आई हैं। अफगानिस्तान के पढ़े-लिखे लोगों के नाम के आगे-पीछे हिन्दी के शब्द रहेंगे, जैसे मान्यवर मौलवी तसद्दुक हुसेन शास्त्र-विशारद। इसकी उपमा Honourable पं० मदनमोहन मालवीय Bachelor of Arts हैं।" अकसर ऐसे ही मनोरंजन रहा करते थे।

उन दिनों मैं फोटोग्राफी का अभ्यास कर रहा था। मैंने हरदयाल जी से कहा कि मैं आपका एक चित्र उतारना चाहता हूँ। आप बोले कि चित्र की कोई जरूरत नहीं। अगर मैं उनको भूल जाऊँगा तो मैं इस योग्य नहीं कि मेरे पास उनका चित्र रहे, और अगर नहीं भूलूँगा तो चित्र की कोई आवश्यकता नहीं, अतः चित्र नहीं खिचवाया। यह है उनकी नम्रता और चुपचाप काम करने की भावना। तनिक उनकी तुलना उन स्वयम्भू नेताओं से कीजिये जो स्वयं अपना चित्र खिचवा कर और कोई-कोई ब्लाक बनवा कर समाचारपत्रों में छपने के लिये भेजते हैं। त्याग, तपस्या और वाहवाही से बचना ही मनुष्य की महत्ता का द्योतक है।

इन्हीं २८ दिनों में से एक दिन पं० देवीप्रसाद शुक्ल ने उनसे प्रार्थना की कि वह पण्डितजी की नई निकलनेवाली मासिक-पत्रिका के लिए कोई लेख लिखें। हरदयालजी ने शुक्लजी को पत्र लिखा :—

"लाला देवीप्रसादजी मैं जानता हूँ कि आप ब्राह्मण हैं, किन्तु मैं आपको ब्राह्मण नहीं मानता क्योंकि आप ईसाइयों के नौकर हैं (शुक्लजी क्राइस्ट चर्च कालेज में प्रोफ़ेसर थे) जब तक आप ईसाइयों की नौकरी नहीं छोड़ देते मैं आपकी पत्रिका के लिए कुछ नहीं लिख सकता।" ऐसा पत्र पाने पर भी शुक्लजी ने उनके पास आना और उनकी बातें सुनना नहीं छोड़ा। शुक्लजी उन्हें बड़ी श्रद्धा से देखते थे। मुझे तो हरदयालजी अपना मित्र समझते थे और एक दिन कहने लगे कि जब लाहौर में उनका आश्रम खुल जाये तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहाँ आऊँ। मैंने वादा भी कर लिया था। किन्तु दुर्भाग्य से वह आश्रम न खुल सका। मैं भी हरदयालजी को अपना मित्र ही समझता था किन्तु उनसे अनेक बातें सीखी हैं अतः उन्हें 'गुरुजनों' की सूची में शामिल कर लिया है। वैसे वह थे तो मुझसे उम्र में कुछ छोटे ही और सदा मित्र का-सा बर्ताव करते थे और मैं भी उन्हें अपना साथी समझता था।

वह प्रायः तीसरे पहर रामायण बाँचा करते थे। किन्तु उसका अर्थ करने में देश और विदेश की सारी राजनीति पर आलोचना कर जाते थे। उन्होंने मेरे पढ़ने के लिये पुस्तकों की एक सूची बनायी थी जिनका मूल्य लगभग ५००) रुपये होगा। उस सूची की प्रत्येक पुस्तक के बारे में उन्होंने थोड़ा-बहुत हाल बतला दिया था। जो पुस्तकें मैंने उनमें से पढ़ीं उनमें वही बातें पाईं जिनका वर्णन लाला हरदयालजी ने किया था।

उनकी स्मरणशक्ति! वह बातें करते जाते थे और सामने रखी हुई पुस्तक के पन्ने बीच-बीच में उलटाते जाते थे। और इसी तरह किताब समाप्त कर देते थे। फिर कभी बात करने पर पुस्तक का हाल बतलाने लगते थे। यह थी उनकी बुद्धि की तीव्रता!

वह केवल देशभक्त ही न थे किन्तु सारी मानव-समाज की भलाई का उन्हें ध्यान था और पीड़ितों के तो वह परम मित्र थे। एक दिन कहने लगे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य होता तो मैं इङ्गलैंड से यहाँ आने के बजाय रूस जाता। वहाँ के लोग भी बड़े दुखी हैं।

अपनी बुद्धि की प्रखरता का उदाहरण तो वे अनेक बार दे चुके थे। जिन दिनों वे कालेज के फर्स्ट इयर में पढ़ते थे, उनके किसी मित्र ने Light of Asia नामक पुस्तक मँगवाई। हरदयाल जी ने अपने मित्र से कहा कि आज की रात के लिये यह पुस्तक मुझे दे दो, कल कालेज आने पर मैं उसे लौटा दूँगा। जब दूसरे दिन वह पुस्तक उस मित्र को लौटा दी गई, तब उक्त मित्र ने उनसे पूछा कि क्या तुमने इसे पढ़ लिया। अगर पढ़ लिया है तो बतलाओ कि अमुक स्थान पर क्या लिखा है? हरदयालजी ने तुरन्त उत्तर दिया कि अमुक बात पुस्तक के बाईं ओर के पन्ने पर लिखी है और उसमें यह लिखा है। उनका मित्र दंग रह गया और उसने वह पुस्तक उन्हें भेंट कर दी। उनकी बुद्धि की विलक्षणता और उनकी योग्यता के सम्बन्ध में एक किंवदन्ती यह भी है कि जिस समय एम० ए० के इम्तिहान में उन्होंने Essay (निबन्ध) का पर्चा लिखा तो परीक्षक ने उस पर नोट लिख दिया कि "मैं स्वयं ऐसा लेख नहीं लिख सकता, इसे मैं जाचूँ क्या!" जो कुछ भी हो, इतना तो निर्विवाद है कि उन्होंने

शनै-शनैः एम० ए० में University का Record beat किया था। इसीलिये उन्हें एक छात्रवृत्ति मिली थी जिसकी सहायता से वह विलायत गये थे और वहाँ तीन महीने के बाद संस्कृति में सर्वप्रथम आने पर उन्हें एक दूसरी छात्र वृत्ति मिली थी, जिसकी सहायता से वह भारत आकर अपनी स्त्री को विलायत ले गये थे। सुना है उन्होंने केवल इस विषय पर कि अंगरेजी Constitution (विधान) क्या है २०० पुस्तकें पढ़ी थीं। Oxford विश्वविद्यालय में वह जब काफी अध्ययन कर चुके तो उन्होंने सरकारी छात्रवृत्ति स्वयं बन्द कर दी और परीक्षा देने से इसलिये इन्कार कर दिया कि मुझे कोई डिग्री नहीं चाहिये। वहाँ के Principal ने कहा कि "मिस्टर दयाल Govt. of India से तुम्हारा झगड़ा है तो तुम उनकी छात्रवृत्ति मत लो, मैं एक छात्रवृत्ति अपने पास से तुम्हें दूँगा। अगर तुम हमारे कालेज से परीक्षा दोगे तो इसे अपनी प्रतिष्ठा समझूँगा।" परन्तु हरदयालजी ने उनकी बात नहीं स्वीकार की और कहा कि "मुझे जो पढ़ना था वह मैं पढ़ चुका। इसीलिये मैं यहाँ आया था। भारत में इसके साधन न थे।" हरदयालजी सचमुच डिगरियों से चिढ़ते थे। जब कोई उनके नाम के सामने एम० ए० लिख देता था तो उसको लिख भेजते थे कि "भाई मैंने एक बार पाप किया है, अब आप हमेशा मुझे गाली क्यों देते हैं ?" अर्थात् डिग्री को वह एक गाली समझते थे।

जिस समय वे विलायत में थे तब उनकी स्वर्गीय काशी प्रसाद जायसवाल और भाई परमानन्द से बड़ी घनिष्ठता होगई थी। भाई परमानन्द ने अपनी "कालेपानी की कहानी" में लाला हरदयाल के सम्बन्ध में कई जगह थोड़ा-बहुत लिखा है।

लाला हरदयाल पैदा हुए थे एक गरीब खानदान में और आगे बढ़े अपनी शक्ति और प्रतिभा से। एक ओर गरीबी और

दूसरी ओर देश की परतन्त्रता, इन्ही दोनो की लडाई मे उनका सारा जीवन बीता। उन्होने अपनी शक्ति से पढ़ा और वे अपनी प्रतिभा से चमके।

उनमे कुछ ऐसी विशेषताएँ थी, जो विरले ही पुरुषो में मिलती हैं। उनका जीवन एक आदर्श की ओर उन्मुख रहा और उनकी सारी शक्ति उसी आदर्श की प्राप्ति की ओर लगी रही। पढ़ने-लिखने मे वह इतने तेज थे कि अपना सानी नही रखते थे। त्याग, लगन और कार्यशक्ति उनमे कूट-कूट कर भरी गई थी। वह सदा कष्टों का आह्वान करते थे। मुसीबतो से जूझना ही उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी। जिसे उनकी बौद्धिक प्रखरता और स्वतन्त्र व मौलिक विचारधारा को देखना हो वह उनके लेखों को पढ़े।

सन् १९०८ मे उनके लेख पजाब के उर्दू समाचारपत्रो में प्रायः निकले थे। उनमे से अधिकतर को लाला लालचन्द 'फलक' ने अपनी 'बन्देमातरम् बुक एजेन्सी' से पुस्तकाकार छाप दिया था। जो लेख पुस्तको के रूप मे प्रकाशित हुए वे थे :—

१—कौमी तालीम, २—क़ौमे किस तरह जिन्दा रहती हैं, ३—मज़ामीन हरदयाल, ४—सरकारी मुलाज़िमत। इनके अलावा भी अनेक लेख निकलते थे। उनके कुछ उर्दू के लेख कानपुर के 'कृष्ण' मे भी छपे हैं। अंगरेजी में उनके लेख Modern Review मे ही अधिकतर निकलते थे। कुछ लेख .... Magazine मे भी निकलते थे ? कुछ अगरेजी लेखों का संग्रह काशी से 'Writings of Lala Hardyal' के नाम से छपा है। हिन्दी मे इन पंक्तियों के लेखक ने उनके कुछ लेखो का अनुवाद करके 'लाला हरदयाल के स्वाधीन विचार' नाम से

निकाला है। पहले संस्करण में ९ लेखों का अनुवाद था और दूसरे में १७ का। इनके कुछ लेख लाला लाजपतराय के 'People' में भी प्रकाशित हुए हैं, जो प्रायः विदेशों से ही लाला हरदयाल ने भेजे थे। उनकी लिखी हुई कुछ पुस्तकें भी हैं। Education पर उनके जो लेख 'Punjabee' अखबार में निकले थे वे पुस्तकाकार भी छप गये हैं उस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद "अमृत में विष" नाम से हो गया है। हरदयालजी की एक पुस्तक है 'जर्मनी में मेरे ४४ मास'। 'इन्सानियत और मजाहिब' नाम से उनकी एक अंगरेजी पुस्तक का उर्दू अनुवाद भी निकला है। उनकी सबसे पिछली पुस्तक Hints for self culture है जिसका हिन्दी अनुवाद 'आत्म-सुधार' के नाम से श्रीचन्द्रशेखर शास्त्री ने दिल्ली से निकाला है। इस पुस्तक को पढ़कर आपको एक झलक मिल जायेगी कि उनका ज्ञान-भण्डार कितना अपार था। उनकी लेखनी में प्रवाह था और उनका तर्क अटूट होता था। उनके प्रत्येक शब्द से उनकी प्रतिभा टपकती है। जिस किसी भी भाषा में उन्होंने लिखा उससे स्पष्ट यह मालूम देता है कि लेखक का भाषा पर अधिकार है। अंगरेजी, उर्दू, हिन्दी फ्रेन्च, जर्मन, स्वेडिश आदि कई भाषाओं में उन्होंने लिखा है। यह देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे प्रतिभावान आदमी का अधिकतर समय विदेशों में बीता और वहाँ के पत्रों में जो कुछ उन्होंने लिखा, और कदाचित् बहुत लिखा वह हमें अप्राप्य है। लाला हरदयाल इङ्गलेंड, अमेरिका, फ्रान्स, जर्मनी और स्वीडेन आदि देशों में काफी समय तक रहे हैं स्वीडेन में तो लाला हरदयाल अपने लेखों और व्याख्यानों ही के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करते थे। अमरीका में वह पहले हिन्दुस्तानी थे जो वहाँ की एक यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर नियुक्त हुए। अमरीका से निकलने 'गदर' और 'तलवार' नामक पत्रों के वह सूत्रधार थे। जिस समय वह स्वीडेन

में थे उस समय उन्हे अपनी ठण्ड निवारण के लिये कोयलो के दामों के वास्ते व्याख्यान देकर धन जमा करना पड़ता था। इन पंक्तियो के लेखक और स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने उन्हे ३० पौंड भेजे कि इस धन से कोयला खरीद लें और जो समय बचे उसमें भारत के लिये कुछ लिखें। इस सम्बन्ध मे उन्होने वहाँ से कुछ लिखकर भेजा जो 'संसार के महापुरुष' के नाम से सिलसिलेवार कई समाचारपत्रो मे निकला किन्तु यह सिलसिला अधिक दिनो तक नहीं चल सका। कुछ दिनों बाद उनके पत्र मेरे पास या गणेशजी के पास आना बन्द हो गये। मेरे पास तो उनके पत्र हिन्दी ही मे आये थे। एकआध अब भी मेरे पास रखा है।

जिस समय हरदयालजी हिन्दुस्तान मे थे उस थोड़े समय मे उन्होंने यहाँ के पत्र-पत्रिकाओ में काफ़ी जोशीले और तर्कपूर्ण लेख लिखे, जिनका प्रभाव भी लोगों पर पड़ना प्रारम्भ हो गया था। हमारे सूबे की सरकार इससे चौकन्नी हुई और सम्भव था उन्हें किसी बहाने से फाँस कर बन्द कर देती। किन्तु लाला लाजपतराय ने शीघ्रातिशीघ्र उन्हे विदेश भेज दिया और वहीं उनके जीवन का अधिक भाग व्यतीत हुआ। यह हमारा दुर्भाग्य है कि सर तेज बहादुर सप्रू आदि के प्रयत्न से जब उन्हे भारत आने की आज्ञा हुई, तब अकस्मात् अमरीका मे उनका देहान्त हो गया और जो लाभ हमें उनकी विद्वता और प्रतिभा से होता उससे हम वंचित रह गये। मैं लोकमान्य तिलक से लेकर एक टुटपुँजिया स्वयम्भू नेता तक से मिला हूँ किन्तु लाला-हरदयाल सरीखा तेज, प्रतिभावान और प्रखर बुद्धि का मनुष्य नहीं देखा। अंगरेजी मे जिसे Genius कहते हैं वह वास्तव मे हरदयालजी थे। मैंने उन्हे बड़ो-बड़ो के सामने बातें करते देखा है। एक बार उन्होने अपनी वाक्पटुता से लाला लाजपत-

राय जैसे महापुरुष का मुंह बन्द कर दिया, यद्यपि वह लालाजी के 'अकेर साथ रहकर काम करना वायमें फक़ समझते थे'— ऐसा स्वयं उन्होंने लिखा है। उन्होंने एक बार एक टापू में जाकर तपस्या भी की थी। वह बरगद के वृक्ष की तरह इधर-उधर अपनी शाखाएँ नहीं फैलाते थे किन्तु ताड़ के वृक्ष की तरह सीधे अपने मार्ग पर बढ़ते चले जाते थे। किन्तु वह एकांगी थे और तस्वीर का एक ही पहलू देखते थे। मुझे उनका एक वाक्य याद रहा है और रहेगा :—

"I love not life alone, not it's pleasures. I obey only my conscience अर्थात् "न तो मुझे जीवन से प्रेम है और न उसके सुखों से, मैं तो केवल अपने अन्तःकरण की वाणी की आज्ञा पालन करता हूं।"

लाला हरदयाल के अनमोल बोल

१—हिन्दू सदैव से उन चीजों को बड़ा समझते आये हैं जिनसे मानव जाति का किसी न किसी अंश में उपकार होता आया है। गो, गंगा और भारतभूमि को वे माता के नाम से पुकारते हैं। फिर हम अपने सब सुखों की जननी अपनी हिन्दी को मातृभाषा कह कर क्यों न पुकारें ? यदि किसी शक्ति के द्वारा हम से अपनी भाषा छिन जावे तो हमारी कैसी दुर्दशा होगी इस बात के विचारने से ही दुःख होता है।

२—भारतवासियों में देशभक्ति और आत्मसम्मान की कमी है इस कारण भी पादरियों ने सफलता प्राप्त की है। पाश्चात्य पदार्थ-विज्ञान के आविर्भाव के साथ-साथ हिन्दू अपने जातीय धर्म को प्यार करने में कमी करने लगे। यहाँ तक कि वे अपने बच्चों को ईसाइयों के पंजों से

बचाने का ज़रा भी यत्न नहीं करते। स्वार्थ ने उनके सदाचार को ग्रस लिया और विषय-विलास उनके सिर पर सवार हो गया।

३—भारतवर्ष में तत्वज्ञान वा ब्रह्मज्ञान मूर्खता का सदैव से सहायक रहा है। अर्थात् ज्ञान के नाम से बहुत कुछ अज्ञान का प्रचार किया गया है। प्रथम तो भारतवर्षीय विद्वानों की अधिकतर मानसिक शक्ति धनोपार्जन रूपी आखेट में खर्च होती है और बाकी जो बचती है उसे शुष्क ज्ञानवाद हड़प कर जाता है। शुष्क ज्ञानवाद भारत के लिये एक शाप सिद्ध हुआ है। इसने इस देश के इतिहास के रूप को बिगाड़ कर उसको सत्यानाश कर दिया। इस मिथ्या ज्ञान के फेर में पड़ कर बडे-बड़े आदमी बकवानी और बातूनी हो गये।

४—जिस तरह एक साँप की जबरदस्त आकर्षण शक्ति से एक चिड़िया उसके मुँह में खिंच जाती है उसी तरह हिन्दुओं की बुद्धि इस ब्रह्मज्ञान की ओर खिंच जाती है। इसने हिन्दुओं की कलाओं और विद्याओं की जड़ काट दी है। आओ अब हम इसका अन्त करें। इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्य-जाति की बाल्यावस्था में हुई थी, परन्तु शोक इस बात का है कि हिन्दुस्तान बालिग होकर भी लड़कपन के खेलों से अब तक खेल रहा है। यदि ऐसी अवस्था में उसे पश्चिम का शिष्य बनना पड़े तो आश्चर्य ही क्या है?

५—यदि संसार का एक भी अच्छा आदमी या स्त्री अच्छे रास्ते से भटक जाय तो वह संसार के लिये एक विपत्ति सिद्ध हो सकती है। केवल काम ही से संसार की सहा-

यता नहीं हो सकती। काम हो पर वे ठीक काम हों। भारत इतना गरीब है कि एक-एक कौड़ी उसके लिये बहुमूल्य है। अन्य देशों में देशभक्तों और मानव-जाति के प्रेमियों के झुण्ड के झुण्ड हैं। ये लोग अपने देश का हित सदा सोचा करते हैं। परन्तु भारतमाता अपने कुछ अयोग्य, भीरु और गुमराह बेटे-बेटियों ही पर गर्व कर सकती है, जो कभी-कभी उसके भविष्य के विषय में कुछ सोच लिया करते हैं।

६—किसी जाति का जीवन उसके इतिहास, गाथाओं तथा साहित्य पर निर्भर है।

७—एक जाति को जीवित रखने के लिये यह आवश्यक है कि उसके प्रत्येक व्यक्ति और शेष जाति में पूर्ण ऐक्य-भाव हो और प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वार्थ को जाति के हित के सामने तुच्छ समझे।

८—कोई व्यक्ति अपनी आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति तब तक नहीं कर सकता जब तक कि वह पुरानी जातियों की एकत्रित शिक्षा से लाभ नहीं उठाता।

९—हमारे जीवन का सुधरना अथवा बिगड़ना हमारी क्रियों और हमारे व्यवसाय पर निर्भर है।

१०—इतिहास से बढ़कर शिक्षाप्रद कोई वस्तु नहीं। वह हमारे सम्मुख वह उपदेश रखता है जिसे संसार ने अपना रक्त और पसीना बहाकर स्वानुभव की लेखनी से हमारे लिये लिखा है।

११—राष्ट्रभाषा एक जाति को अन्य जातियों से पृथक करने का सबसे बड़ा कारण है। जिस देश की अपनी भाषा नहीं वहाँ जातीयता का विचार कभी नहीं रह सकता।

१२—किसी व्यक्ति के मन पर तर्क की अपेक्षा अनुभव अधिक प्रभाव डालता है।

१३—जो जाति निज गौरव और आत्माभिमान को त्याग चुकी है वह सांसारिक वैभव को फिर नही प्राप्त कर सकती।

१४—शिक्षा से मनुष्य अपने जीवन के कर्तव्यो के पालन करने मे समर्थ होता है।

१५—संसार मे सब बुराइयो का कारण दरिद्रता है। निर्धनता दासत्व की जड़ है। निर्धनता के कारण ही मनुष्य के उच्च भावो का विनाश होता है।

१६—वे जो सुखी रहकर ही ससार को सुखी करना चाहते हैं, असफल होते हैं। किन्तु वे जो अपने सुखों को ठुकरा कर संसार को सुखी करना चाहते है, सफल होते हैं।

१७—जिस आदर्श को कार्यरूप मे परिणित नही किया जाता वह सरगर्मी पैदा नही कर सकता।

१८—किसी जाति मे शारीरिक क्षीणता का होना उसके मस्तिष्क-पतन का कारण होता है।

१९—महापुरुषो के वाक्य जाति की चिरस्थाई सम्पत्ति है।

२०—दुनियाँ की स्थायी सम्पत्ति स्त्रियो और पुरुषो की बुद्धि और आचरण है। ज्ञान और चरित्र रूपी पूँजी सारे सुखों की पथप्रदर्शक है। जितना ही लोग बुद्धि और आचरण का अधिक सदुपयोग करते हैं, उतने ही अधिक वे दरिद्रता, मूर्खता और रोग से मुक्त होते है।

महात्मा गांधी

अफ़रीका से लौट कर भारत आने के पहले ही गांधीजी की कीर्ति हिन्दुस्तान में आ गई थी। उनके कार्यों का प्रभाव लाखों ही भारतवासियों पर पड़ा था और वे उनकी ओर आकृष्ट हो चले थे। उनमें से एक इन पंक्तियों का लेखक भी था। मैंने अपने बड़े पुत्र 'भीष्म' को एक भजन गांधीजी के गुणगान का हारमोनियम पर सिखलवा दिया था, जिसे स्वामी सत्यदेव के लेक्चर में, जो प्रताप पाठशाला में करवाया गया था, मैंने उससे गवाया था। उस भजन में था—'उस दूर अफ़रीका से आवाज़ आ रही है, गांधी से वीर योधा अब जेल जा रहे हैं।' उस समय गांधीजी महात्मा नहीं कहलाते थे, बल्कि 'कर्मवीर मिस्टर गांधी' कहे जाते थे।

मैंने गांधीजी को पहले-पहल सन् १६१६ के कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में देखा था। उस समय वह एक अँगरखा पहने रहते और सर पर गुजरातियों का-सा मिलबिल साफ़ा बाँधे रहते थे। उनका उस समय का भोजन कच्ची मूँगफली और इमली था। वह अपने दल के साथ यात्रियों की सेवा करने आये थे और मैं भी एक स्वयंसेवक की हैसियत से एक दल में गया था, जो पं० हृदयनाथ कुंजरू की अधीनता में काम कर रहा था। गांधीजी के पुत्र देवदास गांधी भी मेरी ही टुकड़ी में एक स्वयंसेवक थे। वहाँ भी महात्माजी ने अन्य कामों के अतिरिक्त अपने दल से टट्टी पर मिट्टी डालने और पाखाने के स्थान को साफ़-सुथरा रखने का काम लिया था।

दूसरी बार गांधीजी के दर्शन उसी साल अ० भा० कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ में हुए थे। अब तक महात्माजी का वही भेष था और वह मिस्टर गांधी ही थे। विषय निर्धारिणी समिति में तिलक महाराज के सामने उनकी कोई कद्र न थी। जब लखनऊ कांग्रेस के बाद वह कानपुर प्रताप प्रेस में आये तो किसी ने यह भी नहीं जाना कि वह कब आये और कब चले गये, क्योंकि उसी दिन तिलक महाराज कानपुर आये थे और सारा शहर उनके दर्शनों के लिये उन्हीं की ओर आकृष्ट हो गया था। जब तक तिलक महाराज जीवित रहे तब तक गांधीजी लुप्त से ही रहे। सच है एक आकाश पर दो सूरज नहीं चमकते। जब सन् १९२० की ३१ जुलाई की रात को १ बजे एक सूरज अस्त हुआ तब पहली अगस्त से दूसरा सूरज भारत के राज-नैतिक आकाश में चमकना शुरू हुआ और उसने अपना अस-हयोग के प्रोग्राम का प्रकाश फैलाना शुरू कर दिया।

सन् १९२० की कलकत्ते की विशेष कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पास हुआ। तब से कांग्रेस की बागडोर महात्मा गांधी ही के हाथों में हैं और तब से अन्य राजनैतिक तारे धुंधले पड़ गये। इन २५ वर्षों में मैंने महात्माजी के अनेक व्याख्यान सुने और उन्हें बहुत पास से देखा। उनका साबरमती का आश्रम भी देख आया। कुछ दिन तक मैं उन्हें दूर से ताकता रहा और कुछ बड़ी श्रद्धा से नहीं देखा, क्योंकि मैं तिलक-स्कूल का आदमी था और लालाजी का चेला। किन्तु 'जादू वह है जो सर पर चढ़कर बोले।' धीरे-धीरे मैं उनकी ओर खिंचता गया और कुछ दिनों बाद पूरा उनके रंग में रंग गया। और अब वही मेरे क्या सारे देश के एकमात्र नेता हैं। उनके सिवा दूसरा कोई नहीं है।

जिन दिनों उन्हें पास से देखा, तब उनमें इतनी श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी कि कभी यह इच्छा ही नहीं हुई कि उनसे किसी शंका समाधान के लिये कोई प्रश्न कर लूँ। सदा उन्हें ठीक ही समझा और यथाशक्ति उनकी आज्ञा पालन करने का प्रयत्न किया। उनकी बात को वेद-वाक्य माना और अपने हृदय का देवता समझ कर उनकी पूजा करता रहा। मेरे जीवन का वह शुभ दिन है जब मैंने उनके चरणों के समीप बैठकर १९३४ में तिलक-हाल के उद्घाटन पर चित्र खिंचवाया था।

महात्माजी के कौन-कौन से गुण-गान किये जायँ। उन्होंने देश को एक ऐसा कार्यक्रम दिया जिसके पूरा करने में उसे जुटना पड़े और यदि वह पूरा कर लेता तो उसे स्वराज्य अवश्य मिल जाता। देशवासियों ने उसे एक अंश में पूरा किया और उतना ही लोग आगे भी बढ़ पाये। कार्यक्रम चतुर्मुखी था, जिससे हमारी भौतिक, नैतिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति होती। उन्होंने कांग्रेस को एक संघटन दिया, जिससे कांग्रेस केवल तीन दिन का तमाशा न रही और प्रत्येक कांग्रेसजन को साल भर करने का कुछ काम मिला। उन्होंने देश को वर्त-मान तिरंगा झंडा दिया जिस पर सैकड़ों आदमियों ने अपना बलिदान चढ़ाया और अपने बलिदान से उसे पवित्र कर दिया। महात्माजी ने देश-प्रेमियों को खद्दर की एक वर्दी दी और वस्त्र के लिये स्वावलम्बी बनाने के लिए हमें तकली और चर्खा कातने का आदेश दिया। नशे की चीजों से घृणा सिखलाई और अछूतों को गले लगाकर हिन्दू-धर्म का कलंक मिटाया। सत्य और अहिंसा की उपासना करने का आदेश दिया और अपने व्यवहार में उसका प्रयोग करके हमारे सामने नमूना रखा। ग्रामों की दशा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करके हमें सच्चे

सेवक बनने का अवसर दिया। हमारे हृदयों से जेल का भय निकाल कर हमे निर्भयता का उपदेश दिया। स्वयं परदुःख-कातर और न्यायपक्ष के लिये जूझने वाला बनकर हमे शिक्षा दी कि हम उनके आदर्श पर चलकर भगवान-भक्त बने। उन्हे जिस बात को कहना हुआ उसे कार्य मे लाकर दिखला दिया। कार्यशीलता उनके स्वभाव का एक अंग बन गई है। उनके समय का प्रतिक्षण देश-हित चिन्तन ही में व्यतीत होता है और वह एक सेकेन्ड भी व्यथ नही गॅवाते। और ऐसा ही करने का हमें अपनी दिनचर्या से उपदेश देते हैं। स्वास्थ्य, सफाई, भोजन, व्यायाम, रोगी-सेवा, प्रार्थना, बच्चो से प्रेम, अपने धर्म से अनुराग और अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता और प्रेम के भाव आदि अनेकानेक सद्गुणों को अपने आचरण मे लाकर हमे मनुष्य से देवता बनने का उपदेश देते रहते हैं। अक्सर लोग अपने हृदय की मर्मव्यथा उन्हें सुनाते हैं या पत्रो द्वारा उन पर प्रकट करते हैं। वे सभी सदा सत्परामर्श पाते रहते है। He has many habits whilch conserve his vigour 'अर्थात् उनमें कुछ ऐसी आदतें है जिनसे उनकी शक्ति संचित रहती है।' और इसी से इतनी वृद्धावस्था मे भी अनेक जवानो से अधिक काम करते रहते हैं। उनके भोजन सम्बन्धी और प्राकृतिक इलाज पर काफी प्रयोग हैं। देश मे गांधी-साहित्य पर्याप्त मात्रा मे हो गया है। जिज्ञासु उसका अध्ययन करें और स्वयं सत्य की खोज करें। वह केवल देश-सेवा ही का पाठ हमे नहीं पढ़ाते किन्तु मनुष्य मात्र की सेवा की ओर हमे अग्रसर करते हैं। He is a saint, philosopher and ascetic 'वे महात्मा दार्शनिक और साधू हैं।' सत्य के जोर से वह अपने विरोधी को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। उनकी वाणी मे जादू है। उनका शत्रु भी [illegible] मने आकर उनकी बात से सहमत हो जाता है और

उनकी प्रतिष्ठा करने को बाध्य हो जाता है। He commands respect 'वे अपनी प्रतिष्ठा बरबस करवा लेते हैं।'

जिस प्रकार हमें अपनी शारीरिक आवश्यकतायें पूरी करने के लिये महात्माजी ने चर्खा-संघ और ग्राम-उद्योग-संघ दिये हैं उसी प्रकार हमारी शिक्षा की पूर्ति करने के लिये उन्होंने तालीमी-संघ की रचना की है। उन्होंने हमारे प्रत्येक अंग की कमी की पूर्ति की ओर ध्यान दिया है। केवल पुरुषों ही को कार्यक्षेत्र में नहीं उतारा है किन्तु स्त्रियों को पूरा मौक़ा दिया है कि वे भी देश की बलिवेदी पर अपनी आहुति चढ़ाने में कोई कसर न उठा रखें। यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल है कि हमें प० मोतीलाल, पं० जवाहिरलाल, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, राजगोपालाचार्य, अब्दुल गफ्फार खाँ, महादेव देसाई, कृपलानीजी, पंतजी डा० पट्टाभी, जमनालाल बजाज, काका कालेलकर और विनोबा आदि सरीखे नर-रत्न मिले हैं। जिन्होंने उनका विरोध किया वे कहीं के न रहे, जैसे सुभाषबाबू, नरीमैन, खरे आदि का कहीं पता नहीं है।

उन्होंने अपने कार्यक्षेत्र के प्रत्येक विभाग के लिये एक-एक संस्था बनाई है। यदि खद्दर के प्रचार के लिये चर्खा-संघ है तो हरिजन कार्य के लिये हरिजन-सेवक-संघ मौजूद है। यदि गाँवों की दशा सुधारने के लिये ग्राम-उद्योग-संघ है, तो गोसेवा के लिये उनका गो-सेवक-संघ गोशाला के साथ चर्मालय भी चला रहा है। उनका 'नवजीवन' 'यंग इण्डिया' और 'हरिजन' आदेश पत्र की तरह पढ़े जाते रहे हैं। हमारी ठीक-ठीक नब्ज टटोल कर एक चतुर चिकित्सक की तरह उन्होंने हमें सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र दिया है, जिसके द्वारा हमारे ही नहीं सारे संसार के क्लेश दूर हो सकते हैं किन्तु शर्त है उसके विधिवत् पालन करने की।

उनमें अटल ईश्वर-भक्ति है, सत्याग्रह उनका हथियार है, उनका एक खास व्यक्तित्व है, उनकी कार्य-प्रणाली निराली है और उन्होंने जीवन के रहस्य को भली प्रकार समझ लिया है। यह हमारा सौभाग्य है कि हम उनके युग में पैदा हुए। यदि हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलते रहें तो हम मनुष्य ही से नहीं किन्तु राक्षस से भी देवता बन सकते हैं।

वैसे तो महात्माजी देश के काम के निमित्त सारे भारत का भ्रमण करते ही रहे हैं किन्तु तीन विशेष अवसरों पर उनके तीन तूफानी दौरे हुए हैं जिन्होने देश मे एक नई जान डाल दी है। उनका पहला दौरा कांग्रेस के १ करोड़ मेम्बर बनाने और कांग्रेस कोष के लिये १ करोड़ रुपया जमा करने के लिये हुआ था। यहीं से देश मे नई जाग्रति उत्पन्न हुई। उनका दूसरा दौरा खद्दर प्रचार और चर्खा-संघ के कोष के लिये हुआ था। इस दौरे में खद्दर के निमित्त २५ लाख रुपये का कोष एकत्रित हुआ और खद्दर को एक स्थायी रूप मिल गया। भारतीय राजनीति में खद्दर को स्थायी स्थान प्राप्त हो गया। उनका तीसरा दौरा हरिजन उद्धार के सम्बन्ध मे हुआ था। इसमे बहुत कुछ महात्माजी का मनोरथ पूरा हुआ। हरिजन-कार्य के लिये पर्याप्त धन जमा हो गया और हिन्दू समाज मे अछूतो के प्रति सहानुभूति जाग्रत होगई, उनके लिये कुछ मन्दिर खुल गये, छुआछूत प्रथा को एक ऐसा धक्का लगा जैसा अनेक सुधारको के सारे प्रयत्नो से आज तक नहीं लगा था। इसी दौरे के सिलसिले मे मेरे पुत्र 'तिलक' ने महात्माजी से अपनी Autograph कापी पर हस्ताक्षर कराये और ५) रुपया उनकी हस्ताक्षर कराई की फ़ीस दी। किन्तु तिलक ने महात्माजी से कहा कि एक वाक्य भी लिख दीजिये। महात्माजी ने कहा कि 'पाँच रुपये और लाओ।' लड़के ने कहा कि मेरे पास तो रुपये हैं नहीं। महात्माजी बोले, 'अपने बाप से

लाओ।' यह घटना डा० जवाहर लाल के बंगले की है। दैवयोग से मैं भी महात्माजी के कमरे में उसी समय पहुँच गया, डाक्टर मुरारी लाल ने महात्माजी से कहा कि 'लो इस लड़के के बाप भी आ गये।' महात्माजी ने मुझसे कहा कि 'तुम्हारा लड़का मुझसे एक वाक्य लिखवाना चाहता है। पाँच रुपये और दो तो इसका काम बने।' मैंने कहा, 'मैं तो कुछ कमाता नहीं हूँ, रुपया कहाँ से दूँ ?' महात्माजी बोले, 'कमाते नहीं हो तो खाते कहाँ से हो ? क्या चोरी करते हो ?' मुझे मजबूरन पाँच रुपये अपने एक मित्र से उधार लेकर उन्हें भेंट करने पड़े और उन्होने 'तिलक' की कापी पर यह वाक्य लिख दिया कि 'नित्य सूत कातो' पुनः तिलक ने महात्माजी से कहा कि इतना लिख दीजिये कि रुपये पाये। महात्माजी बोले, 'पाँच रुपये और लाओ, लड़का बड़ा चालाक है।' इस छोटी सी घटना से यह प्रकट होता है कि महात्माजी कैसे विनोदी भी हैं।

महात्माजी ने भारतीय राजनीति में धर्म का पुट देने मे एक बात और की है और वह है विशेष अवसरों पर २४ घंटे का व्रत रखने की। स्वयं महात्माजी ने तो बड़े लम्बे-लम्बे व्रत किये हैं किन्तु उन्होंने कांग्रेस कार्यकर्ताओं को भी आत्मशुद्धि के लिये कम से कम २४ घंटे का व्रत कई बार करवाया है। परिणाम-स्वरूप अक्सर अवसरों पर लोग शुद्ध राजनैतिक व्रत रखने लग गये हैं। इन व्रतों से हमारी मनोवृति की दृढ़ता तो प्रकट होती है और उद्देश्य की सफलता प्राप्त करने के लिये कुछ थोड़ा सा कष्ट-सहन करने की ओर भी हमारी संकल्प-शक्ति अग्रसर होती है।

१९१९ से भारत का इतिहास महात्मा गांधी के नाम के साथ गुथा हुआ है। उन्होंने कांग्रेस मे नवीन जीवन, नई निर्भ-

यता, नई आत्म-प्रतिष्ठा, नवीन आत्म-त्याग, देश के लिये बलिदान की नई भावना, सत्य और अहिंसा के लिये नूतन प्रयत्न, भर दिया है। अनेक सुधार आन्दोलन जो सड़ रहे थे, या जूँ की चाल से चल रहे थे, जैसे स्वदेशी आन्दोलन, स्त्रियों का आन्दोलन, नवीन साहित्य, अछूतोद्धार, अन्तर-जातीय विवाह, शिक्षा सुधार आदि में महात्माजी ने अपने उपदेशों और अपने उत्तम उदाहरण से एक नवीन जाग्रति और प्रोत्साहन उत्पन्न कर दिया है।

महात्माजी की साधुता, योगियों की-सी उनकी निष्ठा, देश के उत्थान के लिये उनका अपूर्व और अथक परिश्रम, अपने शरीर और मन पर उनका अधिकार, उनका समय का आश्चर्य-जनक सदुपयोग, जिसके द्वारा वे अनन्त मुलाकातें, दर्शकों से भेंट, पत्र व्यवहार, लेख, नियमित और अनियमित सभाएँ, नेताओं के साथ परामर्श और सबसे बढ़कर रोगियों की सेवा और आश्रमवासियों के जीवन की छोटी-छोटी बातों की देख-भाल कर पाते हैं, अनुकरणीय है।

अन्त में महात्माजी के कुछ उन वाक्यों का देना अनुचित न होगा जिनकी ओर मैं अधिक आकृष्ट हुआ हूँ :—

१—जिसे शान्ति की तलाश है उसे अपने अन्तरग मे दृष्टि-पात करना चाहिये।

२—अज्ञान से हानि होना अनिवार्य है; चाहे वह निष्कपटता ही से सम्बन्धित क्यों न हो।

३—शब्दों और कर्म की अपेक्षा विचार अत्यन्त महान होते हैं। जब विचार, शब्द और कर्म में अनुकूलता होती है, तब एक दूसरे की सीमा बन जाता है। बिना प्रभावयुक्त

सामर्थ्य के विचार हवाई शून्यताएँ हैं और धूएँ में उड़ जाती हैं।

४—बड़ी से बड़ी सांसारिक सत्ता के सामने घुटने टेकने से दृढ़ता के साथ इन्कार करने से बढ़कर कोई दूसरी वीरता नहीं है, किन्तु हृदय में कटुता न हो और यह पूर्ण विश्वास हो कि आत्मा ही सत्य है अन्य कोई वस्तु नहीं।

५—जिस प्रकार पानी की वह धार जिसमें कोई बाँध नहीं है, गाँव के गाँव डुबो देती है और फसलों को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार बिना रोकटोक की लेखनी भी केवल विनाश ही करती है। यदि रोक बाहर से लगाई गई है तो वह उसके अभाव से भी अधिक जहरीली होती है।

६—दुनिया की किसी भी बुराई से, जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं, पराधीनता बदतर है।

गांधीजी के जीवन का समयानुक्रम

गांधीजी का जन्म	२ अक्टूबर १८६९
दक्षिण अफ्रीका का प्रस्थान	१८९३
भारत लौटे	१८९५
दक्षिण-अफ्रीका फिर गए	१८९६
ऐंग्लो-बोअर वार में एम्बुलेंस-कोर का प्रबन्ध किया	१८९९
भारत लौटे	१९०१
फिर अफ्रिका गए	१९०२
मिस्टर चेम्बरलेन को मेमोरियल भेंट की	१९०२

ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन और 'इण्डियन ओपीनियन' की स्थापना की	१९०३
जोहान्सबर्ग प्लेग पीड़ितों की सहायता की	१९०४
लार्ड सेलबार्न के यहाँ डेपुटेशन लेकर गये	नवम्बर २२, १९०५
नेटाल के विद्रोह में घायलों की सहायता के दल का नेतृत्व किया	१९०६
'ऐंटी-एशियाटिक ला' के विरुद्ध सत्याग्रह की शपथ ली	१९०६
'एमिग्रेशन ऐक्ट' पर सम्राट की अनुमति	दिसम्बर २६, १९०७
जोहान्सबर्ग में 'एमिग्रेशन ऐक्ट' के विरुद्ध जनता में भाषण और गिरफ्तारी	१९०७
स्वेच्छापूर्ण रेजिट्रेशन का पक्ष लेने के कारण भीड़ में घायल हुए	फरवरी १९०८
लन्दन गये	१९१२
दक्षिण-अफ्रीका में गोखले को बुलाया	१९१२
तीन पौंड के टेक्स का लगना और सत्याग्रह का पुनः प्रारम्भ	सितम्बर १९१३
स्मट्स-गांधी समझौता	
दक्षिण-अफ्रिका की सरकार से अस्थायी संधि	जनवरी १९१४
इण्डियन रिलीफ ऐक्ट पास हुआ	जुलाई १९१४
लण्दन गये और महायुद्ध में भारतीय-स्वयं-सेवक-दल का संगठन किया	सितम्बर १९१४
भारत लौटे	जनवरी १९१५

सरकार ने 'कैसरे हिन्द' मेडल दिया	१९१५
अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की	१९१६
हिन्दू यूनिवर्सिटी का भाषण	फरवरी ४, १९१६
चम्पारन में गिरफ्तारी	अप्रैल १९१७
कांग्रेस-लीग स्कीम का समर्थन किया	१९१७
दिल्ली के वार-कानफरेन्स में भाग लिया	१९१८
रौलेट बिल लागू हुआ	फरवरी १९१९
रौलेट बिल के विरुद्ध सत्याग्रह की शपथ	फरवरी १८, १९१९
सत्याग्रह रोका और उपवास किया	अप्रैल १८, १९१९
लार्ड चेम्सफोर्ड को पत्र भेजा	जून १४, १९२०
कैसरे हिन्द मेडल लौटा दिया और असहयोग प्रारम्भ किया	अगस्त १, १९२०
कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन	१९२०
ड्यूक आफ कनाट को खुली चिट्ठी	फरवरी १९२१
लार्ड रीडिंग से भेंट	मई १९२१
अली बन्धुओं की गिरफ्तारी और उनका क्षमा मॉग लेना	सितम्बर १९२१
प्रिंस आफ वेल्स का भारत में आना और बम्बई में दंगा	नवम्बर १९२१
पंडित मालवीय का लार्ड रीडिंग से मिलने जाना	दिसम्बर १९२१
बम्बई कान्फरेन्स	जनवरी १४, १९२२
लार्ड रीडिंग को चेतावनी	जनवरी १९२२
चौरी-चौरा-काण्ड	फरवरी १४, १९२२
अहमदाबाद में गांधीजी की गिरफ्तारी	मार्च १०, १९२२

जेल की सजा	१९२२
जेल से छूटे	फरवरी, १९२४
'यंग इण्डिया' का सम्पादकत्व ग्रहण किया	अप्रैल, १९२४
उपवास और दिल्ली-कानफरेन्स	सितम्बर ११, १९२४
बेलगाँव कांग्रेस के सभापति	दिसम्बर १९२४
मद्रास-कांग्रेस में स्वतन्त्रता के लक्ष्य की घोषणा	दिसम्बर १९२८
कलकत्ता कांग्रेस में स्वतन्त्रता के प्रस्ताव का पुनः समर्थन	१९२८
लाहौर-कांग्रेस में स्वतन्त्रता की तैयारी	दिसम्बर १९२९
स्वाधीनता-दिवस और उसके प्रस्ताव का पढ़ा जाना	जनवरी २६, १९३०
अ० भा० कांग्रेस कमेटी ने गांधीजी के भद्र अवज्ञा के प्रोग्राम को मंजूर किया और उन्हें डिक्टेटर बनाया	फरवरी १५, १९३०
लार्ड इरविन को महात्माजी का पत्र	मार्च ४, १९३०
अठत्तर अनुयायियों के साथ डाँडी-यात्रा	मार्च १२, १९३०
डाँडी में नमक-क़ानून भंग किया	अप्रेल ६, १९३०
वायसराय ने प्रेस आर्डिनेन्स लगाया	अप्रैल १७, १९३०
वी० जे० पटेल ने असेम्बली की अध्यक्षता से इस्तीफा दिया	अप्रेल २५, १९३०
गांधीजी डाँडी मे गिरफ्तार हुये और यरवदा में नजरबन्द रखे गये	मई ४, १९३०
गांधीजी का लार्ड इरविन को दूसरा पत्र	मई ५, १९३०
अब्बास तैयबजी की धरसाना-यात्रा	मई ९, १९३०
अब्बास तैयबजी की गिरफ्तारी	मई १२, १९३०

धरसाना में सार्वजनिक आक्रमण	मई २१, १९३०
सरोजिनी नायडू गिरफ्तार	मई २३, १९३०
मालवीय जी गिरफ्तार	मई २७, १९३०
मोतीलाल नेहरू गिरफ्तार	जून २०, १९३०
वायसराय के साथ सप्रू और जयकर की सन्धि-वार्ता	जुलाई २०, १९३०
सप्रू और जयकर गांधीजी से जेल में मिले	,, २३, १९३०
जवाहर लाल नेहरू और मोतीलाल नेहरू गांधीजी से यरवदा में मिले	अगस्त १३, १९३०
कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी गैर-क़ानूनी क़रार	,, २६, १९३०
सप्रू-जयकर गांधीजी के प्रस्ताव को लेकर वायसराय से मिले	,, २७, १९३०
वी० जे० पटेल, मालवीय और अन्सारी गिरफ्तार	अगस्त २८, १९३०
समझौते की असफलता	सितम्बर ५, १९३०
राउण्डटेबुल कान्फरेन्स के प्रतिनिधियों की सूची प्रकाशित	सितम्बर १०, १९३०
वायसराय गैर-क़ानूनी संस्थाओं की सम्पति जब्त करने का नौवाँ आर्डिनेन्स लगाते हैं	अक्टूबर ११, १९३०
पंडित जवाहिर लाल रिहा	,, १२, १९३०
फिर गिरफ्तार	,, १९, १९३०
लण्डन में राउण्डटेबुल कान्फरेन्स बैठता है	नवम्बर २, १९३०
वल्लभभाई पटेल गिरफ्तार	दिसम्बर ७, १९३०

वायसराय दो और आर्डिनेन्स जारी करते हैं	दिसम्बर २४, १९३०
कमला नेहरू गिरफ्तार	,, २९, १९३०
वी० जे० पटेल रिहा	जनवरी ६, १९३१
गांधीजी, जवाहिर लाल, सरोजिनी नायडू आदि पच्चीस नेता रिहा	,, २६, १९३१
पं० मोतीलाल नेहरू की मृत्यु	फरवरी ६, १९३१
गांधीजी लार्ड इरविन से मिले	,, १७, १९३१
कांग्रेस कार्यकारिणी ने गांधीजी के नेतृत्व में चलने का निश्चय किया	,, २१, १९३१
गांधी-इरविन समझौता	मार्च ३, १९३१
कांग्रेस कार्यकारिणी समझौते का समर्थन करती है और भद्र-अवज्ञा-आन्दोलन बन्द करती है	,, ४, १९३१
गांधीजी को अहमदाबाद में सत्तर हजार की थैली, एक सोने की तकली और दस मन हाथ का काता सूत	,, १०, १९३१
कानपुर में भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगा	,, २६, १९३१
करांची कॉंग्रेस	,, २८, १९३१
गांधी-इरविन-समझौते का कांग्रेस द्वारा समर्थन	,, ३१, १९३१
गांधीजी की शिमले में लार्ड विलिंगडन से मुलाकात	मई १३, १९३१
गांधीजी की राउण्डटेबुल कान्फरेन्स में जाने की स्वीकृति	,, ३१, १९३१
कांग्रेस कार्यकारिणी का गांधीजी को राउण्ड-टेबुल कान्फरेन्स में भेजने का निश्चय	जून १०, १९३१

चेम्सफोर्ड क्लब में गांधीजी की सर्वप्रथम
राजनीतिक घोषणा — जून २८, १९३१
वायसराय को गांधीजी का कुछ सरकारी अफ-
सरों द्वारा शर्त-भंग के सम्बन्ध में तार जु० १०, १९३१
वायसराय का आश्वासन — „ ११, १९३१
गांधीजी की लार्ड विलिंगडन से मुलाक़ात — „ २८, १९३१
लण्डन में गांधी-स्वागत समिति का निर्माण „ २४, १९३१
गांधीजी की सूरत के कलक्टर को चेतावनी „ २५, १९३१
गांधीजी का वायसराय का तार—
अगर शर्तें तोड़ी गईं तो वे लन्दन न जा सकेंगे
अगस्त ११, १९३१
सरकार का उत्तर असन्तोषजनक और कार्य-
कारिणी का गांधीजी को लन्दन
जाने से निषेध — १३, १९३१
सर चुन्नी भाई के हरिजन-मन्दिर का गांधीजी
द्वारा उद्घाटन — सितम्बर १, १९३१
गांधीजी का वायसराय को बारडोली के
मामलों मे हस्तक्षेप करने का तार „ ११, १९३९
वायसराय का उत्तर असन्तोषजनक, गांधीजी
का लन्दन न जाने का निश्चय — „ १३, १९३१
वायसराय का उत्तर — „ २२, १९३१
भारत-सरकार गांधीजी के लगाये हुये अभि-
योगों का उत्तर देती है — „ २३, १९३१
गांधीजी वायसराय से मिलकर बारडोली की
घटनाओं की तहकीक़ात कराने की एक
कमेटी बनाने का वचन लेते हैं — „ २७, १९३१

एस० एस० राजपुताने से गांधीजी की लन्दन-यात्रा	„ २९, १९३१
गांधी और भारत-सरकार मे गाँधी-इरविन समझौते की उपेक्षा के बारे मे पत्र-व्यवहार	२१ जुलाई से ११ अगस्त
गाँधीजी का विलायत जाने से इन्कार	१३ अगस्त
गाँधीजी का इङ्गलैंड के लिये प्रस्थान	१ दिसम्बर ३१
गाँधीजी का वापस बम्बई आगमन	२८ दिसम्बर ३१
वायसराय से दमन के बारे मे पत्र व्यवहार	२९-१२-३१
दमन का आरम्भ गाँधी-पटेल गिरफ्तार आर्डिनेन्स	४-१-३२
हरिजनो के लिए आमरण उपवास का निर्णय	१८-८-३२
उपवास आरम्भ	२०-९-३२
पूना-पेक्ट स्वीकृत	२६-९-३२
उपवास का अन्त	„ „
कलकत्ता काँग्रेस	३१-३-३३
२१ दिन का उपवास आरम्भ	८-५-३३
गाँधी रिहा	„ „
उपवास का अन्त	२९-५-३३
पूना कान्फरेन्स	१२-७-३३
गाँधीजी गिरफ्तार	१-८-३३
रिहा	४-८-३३
पुनः गिरफ्तार, १ वर्ष दण्ड	....
जेल-नियमों के विरुद्ध उपवास	१५-८-३३
रिहा	२३-८-३३
बिहार भूकम्प	१५ जनवरी १९३४

सत्याग्रह स्थगित करने का वक्तव्य ७ अप्रैल १९३४

रांची कान्फरेन्स और स्वराज्यपार्टी का निर्णय ३ मई १९३४

कांग्रेस के विरुद्ध सरकारी आज्ञा की वापसी १२ जून १९३४

७ दिन का उपवास जुलाई १९३४

कांग्रेस से सम्बन्धच्छेद १७ सितम्बर १९३४

बम्बई कांग्रेस २६ सितम्बर १९३४

असेम्बली चुनाव अक्टूबर नवम्बर १९३४

असेम्बली आरम्भ २१-१-३५

क्वेटा भूकम्प ३१-५-३५

सात सूबों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों की स्थापना १९३७

रामगढ़ कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता की घोषणा मार्च १९४०

व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ किया गया और सर्वप्रथम गांधीजी ने श्री विनोबा भावे को भेजा अक्टूबर १९४०

'क्विट इण्डिया' का प्रस्ताव और बम्बई में कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी ९ अगस्त १९४२

देश भर में भीषण दंगा और विद्रोह अगस्त १९४२

महात्माजी के प्रधान सहकारी श्री महादेव देसाई का देहान्त १५ अगस्त १९४२

बन्दी-दशा में कस्तूर बा का देहावसान २२ फरवरी १९४४

महात्माजी रिहाई ६ मई १९४४

लार्ड वेवल के निमंत्रण पर शिमला कान्फरेन्स में आगमन २५ जून १९४५